श्रीचण्डी-पुराणम्

(हिन्दी अर्थ सहित)

चण्डी : वर्ष ४८ : द्वितीय विशेषाङ्क

श्रीचण्डी-पुराणम्

(हिन्दी-अर्थ-सहित)

सम्पादक

डा० गयाचरण त्रिपाठी

प्राचार्य

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग

अनुवादक/सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल

प्रथम संस्करण, १९८९

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग
इलाहाबाद—२११००६

प्रथम संस्करण
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, २०४६ वि०
२३ अगस्त, १९८९
मूल्य १५-०० रु०

मुद्रक
परावाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग
इलाहाबाद—६

अ-नु-क्र-म

'चण्डी'-स्वरूप-दर्शन ५

'चण्डी' नाम का अर्थ ११

'चण्डी' के विभिन्न स्वरूप १३

'चण्डी' की उपासना १४

१ प्रथमोऽध्यायः (नारद-शापः) १

२ द्वितीयोऽध्यायः (सती-देह-परित्यागः) ४

३ तृतीयोऽध्यायः (दक्ष-चरितम्) ७

४ चतुर्थोऽध्यायः (मधु-कैटभ-वधः) ९

५ पञ्चमोऽध्यायः (घोर-वधे नदी-वर्णनम्) १३

६ षष्ठोऽध्याय (घोर-वधः) १७

७ सप्तमोऽध्याय (चिक्षुर-वधः) २०

८ अष्टमोऽध्यायः (महिषासुर-वधः) २३

९ नवमोऽध्यायः (सुन्दोपसुन्द-वधः) २७

१० दशमोऽध्यायः (मुरादि-दैत्य-निबर्हणम्) ३०

११ एकादशोऽध्यायः (तीर्थ-माहात्म्यम्) ३४

हिन्दी श्रीचण्डी-पुराण

१२ पहला अध्याय (नारद को शाप) ३७

१३ दूसरा अध्याय (सती द्वारा देह का परित्याग) ४१

१४ तीसरा अध्याय (दक्ष का चरित) ४५

१५ चौथा अध्याय (मधु-कैटभ का वध) ४८

१६ पाँचवाँ अध्याय (घोर-वध में नदी का वर्णन) ५३

१७ छठा अध्याय (घोरासुर का वध) ५८

१८ सातवाँ अध्याय (चिक्षुर का वध) ६१

१९ आठवाँ अध्याय (महिषासुर का वध) ६४

२० नवाँ अध्याय (सुन्द और उपसुन्द का वध) ६८

२१ दसवाँ अध्याय (मुर आदि दैत्यों का संहार) ७२

२२ ग्यारहवाँ अध्याय (तीर्थों का माहात्म्य) ७६

परिशिष्ट—श्रीचण्डी-सम्बन्धी साहित्य ७८

'चण्डी'-स्वरूप-दर्शन

देव, दानव आदि और मनुष्य—सभी प्राणी विश्व-जननी अचिन्त्य-शक्ति-रूपा परम-करुणा-मयी चण्डिका की उपासना माता के रूप में सृष्टि के आदि से ही करते आए हैं। उसके दिव्य-स्नेह-मय अङ्क में स्वयं को समर्पित करके वे नित्य सुरक्षा का अनुभव करते आए हैं। बाल-सुलभ चापल्य के कारण उसी के कृपा-किरणांश द्वारा प्रदत्त बुद्धि से उसके स्वरूप का दर्शन करने का भी यत्न करते आए हैं। स्वरूप-दर्शन के कुतूहल में विश्व-सम्बन्धी उसके असंख्य कार्य-निर्वहण के कारण उस परम चिन्मयी सर्व-स्वरूपा के अगणित स्वरूप दिखाई देते हैं। आश्चर्य-चकित होता है साधक अपनी पराम्बा के उन स्वरूपों को देखकर, यद्यपि वह यह भली-भाँति समझता रहता है कि चिद्-रूपा पराम्बा समष्टित्वेन एका, अनंशा और पर-ब्रह्म-स्वरूपिणी ही है।

देवी-अथर्व-शीर्ष के आरम्भ में ही भगवती का वचन है—

अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च ॥२॥

इस प्रकार की अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व-भूता शक्ति के 'चण्डी'-स्वरूप-चिन्तन द्वारा भगवती का स्मरण करने से रोमाञ्च-पूर्ण अनुभूति की सहज ही उपलब्धि होती है।

'चण्डी' शब्द 'चडि कोपे' से निष्पन्न 'चण्ड'-शब्द में 'ङीष्' प्रत्यय करने से बनता है—ऐसा वैयाकरणों का मत है। इस दृष्टि से इसका अर्थ 'कुपिता' या क्रोध के कारण 'भयास्पदा' होगा। भारतीय ऋषियों ने इनकी मन्त्रात्मक अभ्यर्थना करते हुये इनकी भीषणता का वर्णन भी किया है। धूमावती के स्तोत्र में इसका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जैसे—

चर्वन्तीमस्थि-खण्डं प्रकट-कट-कटा - शब्द - सङ्घातमुग्रम्,
कुर्वाणा प्रेत-मध्ये कहह-कह-कहा-हास्यमुग्रं कृशाङ्गी।
नित्यं नित्य-प्रसक्ता डमरु-डिम-डिमान् स्फारयन्ती मुखाब्जम्,
पायान्नश्चण्डिकेयं झझम-झम-झमा जल्पमाना भ्रमन्ती ॥

टण्टं-टण्टं-टण्टण्टा-प्रकर-टम - टमा - नाद - घण्टां वहन्ती,
स्फें स्फें स्फें-कार-कारा टक-टकित-हसा नाद-सङ्घट्ट-भीमा ।।
लोलन् मुण्डाग्र-माला ललह-लह-लहा-लोल-लोलाग्र-वाचम्,
चर्वन्ती चण्ड-मुण्डं मट-मट-मटितैश्चर्वयन्ती पुनातु ।।
('हिन्दी-मन्त्र-महार्णव', देवी-खण्ड, पृष्ठ ७२७)

यह अवस्था महा-प्रलयावस्था में परम-ऋतात्मिका महा-शक्ति के स्वरूप की झलक है। इसी स्तोत्र के अग्रिम श्लोक में उनके इस विराट् रूप का गान है—

वामे कर्णे मृगाङ्कं प्रलय-परिगतं दक्षिणे सूर्य-विम्बम्,
कण्ठे नक्षत्र-हारं वर-विकट-जटा-जूटके मुण्ड-मालाम् ।
स्कन्धे कृत्वोरगेन्द्र-ध्वज-निकर-युतं ब्रह्म-कंकाल-भारम्,
संहारे धारयन्ती मम हरतु भयं भद्रदा भद्र-काली ।।

इस प्रकार के प्रचण्ड, विकराल स्वरूप के अनेकानेक वर्णन पुराणों में भरे पड़े हैं। देवी, देवी-भागवत, महा-भागवत, वृहद्धर्म, कालिका, चण्डी आदि उप-पुराणों और वामन, मार्कण्डेय, स्कन्द आदि महा-पुराणों में परा-शक्ति के प्रचण्ड रूप का वर्णन विविध दैत्यों के बध के प्रसङ्ग में उनके विभिन्न नामों से किया गया है। 'देवी-पुराण' में विन्ध्य-वासिनी, जया, चामुण्डा, विजया आदि देवियों एवं घोर, वज्र-दण्ड आदि घोर असुरों के बीच हुए भीषण संग्राम के अवसर पर तथा देवी-भागवत, मार्कण्डेय, वामन आदि पुराणों में शुम्भ-निशुम्भ, महिषासुर, रक्त-बीज आदि असुरों एवं कात्यायनी, कौशिकी, चामुण्डा, महा-काली आदि शक्ति-स्वरूपों के मध्य हुए संग्राम के अवसर पर भगवती के क्रुद्ध एवं भीषण रूप का वर्णन मननीय है।

इन सभी अवसरों पर ऋषियों ने एक तथ्य सामान्य रूप से प्रतिपादित किया है कि वस्तुतः चण्डी-तत्त्व एक है, अनन्त शक्ति-रूपा है तथा कार्य-भेद से अनेक रूप धारण करती है। वामन, मार्कण्डेय और देवी - भागवत में महिषासुर के अत्याचार से पीड़ित देवताओं के तेजस् का संहत स्वरूप 'कात्यायनी' के रूप में उत्पन्न हुआ था। चण्ड-मुण्ड के बध के लिये पार्वती के कोश से ही कृष्ण-वर्णा 'कौशिकी' का आविर्भाव हुआ था। रक्त-बीज के सर्व-नाश के लिये

महा-विकराल 'चामुण्डा' प्रकट हुई थीं। रक्त-बीज के संग्राम में र रा देवताओं की शक्तियाँ पृथक्-पृथक् अपने वाहनों एवं शस्त्रों द्वारा युद्ध कर रही थीं, किन्तु निशुम्भ-बध के समय आवश्यकता न रहने पर उन देवताओं में विलीन न होकर महा-सरस्वती-रूपा 'चण्डी' के ही विग्रह में वे सब समा गईं। उस समय भगवती ने उद्‌घोष किया कि—

एकैवाहं जगत्यत्र, द्वितीया का ममापरा ?
पश्यता दुष्ट ! मय्येव, विशन्त्यो मद्-विभूतयः ।।
अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत् संहृतं मयैकैव, तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।।

—विशुद्ध चण्डी (श्रीदुर्गा-सप्तशती), १०।५, ८, पृष्ठ १००

इस घोर विनाश-कारी संग्राम में सर्व-तेजो-मयी 'चण्डी' को देवता प्रणाम करते हैं—

असुरासृग् - वसा - पङ्क - चर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके ! त्वां नता वयम् ।।

—विशुद्ध चण्डी (श्रीदुर्गा-सप्तशती) ११।२८, पृष्ठ १०६

उक्त सभी वर्णनों में यह तथ्य भी सामान्य रूप से अनुगत है कि परा-शक्ति ने जब भी प्रचण्ड रूप धारण किया है, उसके मूल में सन्मार्गानुयायी देवों एवं ऋषियों का आर्त-नाद कारण रहा है। चाहे महिषासुर द्वारा सताए देवताओं की पुकार हो, या मधु-कैटभ से त्रस्त ब्रह्मा की स्तुति हो, चाहे शुम्भ-निशुम्भ द्वारा दलित त्रिलोक की करुणा हो अथवा देवी-भागवत के राजा सुदर्शन की रक्षा-समस्या हो, जब भी त्रिगुणात्मिका चित्-कला की शक्ति का विकट अभिव्यञ्जन होता है, उससे उसकी अलौकिक कृपा ही व्यक्त होती दिखाई देती है—बध्य के प्रति भी तथा रक्ष्य के प्रति भी। महिषासुर के बध के पश्चात् हर्ष-पुलकित, भक्ति-भरित देवताओं ने यही भाव प्रकट किए हैं—

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य,
रूपं च शत्रु-भय-कार्यति-हारि कुत्र ?
चित्ते कृपा समर-निष्ठुरता च दृष्टा,
त्वय्येव देवि, वरदे ! भुवन-त्रयेऽपि ।।
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म,
सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम् ?

लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्र-पूता ।
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति-साध्वी ।।

—विशुद्ध चण्डी (श्रीदुर्गा-सप्तशती) ४/२२, १६, पृष्ठ ७२

करुणा एवं क्रोध, कृपा एवं विनाश परस्पर-विरुद्ध धर्म हैं। इन विरुद्ध धर्मों का एक अधिष्ठान में दर्शन सहज-तर्क-गम्य न होते हुए भी त्रिगुणात्मिका 'चण्डी' में दृष्टि-गत होता है। अतः तत्त्वतः यह स्वीकार करना होगा कि 'चण्डी' वस्तुतः केवल कोप एवं भीषणता को ही नहीं प्रदर्शित करतीं अथवा उनका कोपात्मक स्वरूप मात्र विनाश के लिए नहीं है, अपितु ऋत की रक्षा के लिए वाञ्छित ध्वंस हेतु ही उनका भयानक स्वरूप प्रकट होता है, अन्यथा ऋत का परिपालन यथा-रीति होते रहने पर शक्ति सदा सौम्य, शान्त एवं आनन्द-रूपा ही होती है।

'सप्तशती' के 'गुप्तवती'-टीकाकार ने इन्हीं कारणों से 'चण्डी'-तत्त्व की व्याख्या दार्शनिक दृष्टि से की है। वस्तुतः 'चण्डी' पर-ब्रह्म की धर्म-भूता शक्ति का नाम है। सर्व-रूप ब्रह्म की अचिन्त्या शक्ति समष्टि चिद्-वृत्ति-रूप धर्मात्मक शुद्ध-ब्रह्म के सृष्ट्युन्मुख होने की प्रथम दशा या स्पन्द है। यही चिद्-वृत्ति ज्ञान-इच्छा-क्रिया के रूप में परिवर्तित होती है। इन्हीं तीनों अवस्थाओं को प्रवृत्ति-निमित्त की विविधता के कारण महा-सरस्वती, महा-काली, महा-लक्ष्मी नामान्तरों से भी जाना जाता है। इन तीनों देवियों के समष्टि-रूप को प्रवृत्ति-निमित्त बनाकर पर-ब्रह्म के धर्म को 'चण्डिका'-पद से उच्चारित किया जाता है—

'...ईदृशेक्षणाद्यात्मक-चण्डी चिदादि-नामक - समष्टि - वृत्ति-रूप-धर्मात्मक-शुद्ध-ब्रह्माभिन्नानां ज्ञानेच्छा-क्रियाणां तिसृणां व्यष्टीनां महा-सरस्वती-महा-काली-महा-लक्ष्मीरिति प्रवृत्ति-निमित्त-वैलक्षण्येन नाम-रूपान्तराणि । तादृश-नाम-रूप-विशिष्ट-देवता-त्रय-समष्टित्वं प्रवृत्ति-निमित्ती-कृत्य धर्मे 'चण्डिके'ति व्यवहारः ।।...'

—'गुप्तवत्यादि-सप्त-टीका', गुप्तवती-उपोद्घातः, पृष्ठ ६

आगे चलकर उनके त्रि-रूपात्मकत्व को एक उद्धरण से भी पुष्ट करते हैं—

महा-सरस्वति, चिते, महा-लक्ष्मि, सदात्मिके !
महा-काल्यानन्द-रूपे ! त्वत्-तत्त्व-ज्ञान-सिद्धये,
अनुसन्दध्महे चण्डि ! वयं त्वां हृदयाम्बुजे ।

—वहीं, पृष्ठ १०

ब्रह्म से अभिन्न सच्चिदानन्दात्मिका 'चण्डी' के ब्रह्म-धर्मत्व की पुष्टि 'गुप्तवती'-कार 'रत्न-त्रय-परीक्षा' के उद्धरण से करते हैं—

"तस्माच्छब्दात् पुं-योग-लक्षणे ङीषि 'चण्डी'-पद-निष्पत्तिः । तत्-स्वरूपं चोक्तं 'रत्न-त्रय-परीक्षायां' दीक्षितैः—

नित्यं निर्दोष-गन्धं निरतिशय-सुखं ब्रह्म-चैतन्यमेकम् ।
धर्मो धर्मीति भेद-द्वितयमिति पृथग्-भूय माया-वशेन ।।

धर्मस्तत्रानुभूतिः सकल-विषयिणी सर्व-कार्यानुकूला ।
शक्तिश्चेच्छादि-रूपा भवति गुण-गणश्चाश्रयस्त्वेक एव ।।

कर्तृत्वं तत्र धर्मी कलयति जगतां पञ्च-सृष्ट्यादि-कृत्ये ।
धर्मः पुं-रूपमाद्या सकल-जगदुपादान-भावं बिभर्ति ।।

स्त्री-रूपं प्राप्य दिव्या भवति च महिषी स्वाश्रयस्यादि-कर्तुः ।
प्रोक्ते धर्म-प्रभेदादपि निगम-विदां धर्मि-वत् ब्रह्म-कोटी ।।

—वहीं, पृष्ठ ९

एक ही चेतन-तत्त्व के दो भाव माया के कारण जीव द्वारा कल्पित होते हैं—१. चित्-रूप-धर्मी एवं २. चिति-रूप धर्म ।

ब्रह्म का कृतित्व उसकी इच्छा-ज्ञान-क्रिया 'चिति' या शक्ति का दायित्व है और वह शक्ति अविना-भाव से ब्रह्म में स्थित है । 'चण्डी' के स्वरूप में धर्म और धर्मी दोनों का ऐक्य दृष्टि-गत होता है । चेतना के शक्त्यात्मक उद्रेक का ही नाम 'चण्डी' है । अनन्त ब्रह्माण्ड के समस्त कार्य-जात के रूप में परा-शक्ति के प्रकटन के कारण ही उसे 'चण्डी'-पद से अभिहित किया जाता है । एक-मात्र यही केवल सत्ता सृष्टि-सञ्चालन एवं ऋत के नियमों में बाधक स्थिति, अशिव-तत्त्वों, मोह-रूपी तमस् का ध्वंस करती है । शक्ति के इन कार्यों का वर्णन 'मार्कण्डेय पुराण' के १३ अध्यायों में किया गया है । इस स्तोत्र को उक्त कारणों से ही 'चण्डी'-स्तव नाम दिया गया है ।

परा-शक्ति चण्डी के विराट् शक्त्यात्मक स्वरूप की अति संक्षिप्त व्याख्या 'रुद्र-यामल' के 'सप्तशती-हृदय स्तोत्र' में निम्न प्रकार मिलती है—

ॐ नमो भगवति ! जय जय ज्वाला-मालिनि ! चामुण्डे ! चण्डिके ! त्रिदश-मणि-मुकुट-कोटि-सद्-घटित-चरणारविन्दे ! गायत्री-सावित्री-सरस्वती-महा-बाण-कृताभरणे ! भैरव-रूप-धारिणि ! प्रकट-सुदंष्ट्रोग्र-वदने ! घोर-घोरासने ! नयनोज्ज्वल-ज्वाला-सहस्र-परिवृते ! महाऽट्टहास-धवली-कृत-दिगन्तरे ! दिवाकर-सहस्र-परिवृते ! काम-रूप-धारिणि ! महा-मणि-द्योतित-शशि-प्रभा-सित-सकल-दिगन्तरे ! सर्वा-युध-परिपूर्णे ! कपाल-हस्ते ! भूत-वेताल-परिवृते ! प्रकम्पित-चराचरे! मधु-कैटभ-महिषासुर-धूम्र-लोचन-चण्ड-मुण्ड-रक्त-बीज-निशुम्भ-शुम्भादि-दैत्य-निष्कण्टकी-काल-रात्रि ! महा-माये ! शिवे ! नित्ये ! त्रिभुवन-चराचरे !···

इस प्रकार 'चण्डी'-तत्त्व वस्तुतः परम-करुणा-मयी, सृष्टि-स्थिति-संहार-कारिणी परमा सत्ता है, जिसका दर्शन हम साधना की सरलता के लिए शस्त्रादि से सुसज्जित पराम्बा के रूप में करते हैं। अतः 'चण्डी' शब्द उनके भीषण भाव का ही मात्र परिचायक नहीं है, अपितु उनकी अनन्त, अबन्ध्य, सर्वोच्च शक्ति का भी व्यञ्जक है।

साभार

डा० प्रकाश पाण्डेय
शोध-सहायक
गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग

'चण्डी'-नाम का अर्थ

'चण्डी' नाम के अर्थ के प्रसङ्ग में श्रीभास्कर राय का कहना है—'चण्डी नाम पर-ब्रह्मणः पट्ट-महिषी देवता।'

अर्थात् 'चण्डी'-नाम पर-ब्रह्म की पट्ट-महिषी देवता का वाचक है। 'चण्डी' पद से पर-ब्रह्म में अविना-भाव सम्बन्ध से विद्यमान् परा-शक्ति का ही बोध होता है।

सामान्य शब्द-प्रयोग में भी 'चण्ड' शब्द से असाधारण सामर्थ्य का ही ज्ञान होता है। जैसे 'चण्ड-भानु' (भगवान् सूर्य)—प्रचण्ड हैं किरणें जिसकी, 'चण्ड-वात' (प्रचण्ड आँधी), 'प्रचण्डाग्नि' (प्रचण्ड आग) इत्यादि शब्दों से उस सामर्थ्य का ज्ञान होता है, जिसका परिमाण हम 'इतना है' या 'उतना है', कहकर नहीं बता सकते। दूसरे शब्दों में 'चण्ड' शब्द से अपरिमित शक्ति का ज्ञान होता है।

देश, काल और वस्तु द्वारा हम किसी वस्तु की इयत्ता का नियमन कर सकते हैं, किन्तु जिस पदार्थ का नियमन न देश से, न काल से और न वस्तु से हो सकता है, वह केवल 'पर-ब्रह्म' है। ठीक इसी प्रकार जिस शक्ति का नियमन न देश से, न काल से और न किसी वस्तु से हो सकता है, वह 'चण्डी' है। इसलिए 'चण्डी'-पद से पर-ब्रह्म की शक्ति का ही अर्थ निकलता है। टीकाकार श्रीभास्करराय ने ठीक ही लिखा है कि—'चण्डी नाम पर-ब्रह्मणः पट्ट-महिषी।'

'चडि' धातु का प्रयोग कोप करने के अर्थ में होता है। 'चडि' धातु में ङीष् प्रत्यय करने पर 'चण्डी' शब्द की निष्पत्ति होती है, अतः 'चण्डी' का अर्थ 'कोपवती'—कोप करनेवाली हुआ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह कोप साधारण सांसारिक कोप न होकर समस्त ब्रह्माण्ड के नियन्त्रण के लिए होनेवाला कोप है।

'कस्य बिभ्यति देवाश्च जात-रोषस्य संयुगे'—इत्यादि वचनों से विदित होता है कि कल्पान्त-समय में समस्त देवताओं का समूह उस प्रचण्ड-शक्ति के कोप से भयभीत होकर, उसकी आज्ञा का पालन करना ही अपना कर्तव्य समझता है।

इसके अतिरिक्त—

प्रसादो निष्फलो यस्य, कोपोऽपि च निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति, षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ।।

अर्थात्—जिस राजा की प्रसन्नता से प्रजा को कोई भी फल प्राप्त नहीं होता और न उसकी अप्रसन्नता से कोई हानि ही होती है, ऐसे राजा को प्रजा उसी प्रकार नहीं चाहती—जैसे स्त्रियाँ अपने नपुंसक पति को नहीं चाहतीं ।

इस उक्ति के अनुसार महा-भय-जनक कोप ही सफल बतलाया गया है । इसलिये 'चडि कोपे' धातु का मुख्यार्थ भी 'लोकोत्तर कोप' ही है ।

"नमस्ते रुद्र-मन्यवे"--इस वैदिक सूक्त में भी सबसे पहले मन्यु के लिए (क्रोध के लिए) नमस्कार किया गया है । 'मन्यु' का अर्थ क्रोध और यज्ञ दोनों होता है । यहाँ पर मन्यु का अर्थ क्रोध है, यज्ञ नहीं ।

श्रुति भी ऐसे अर्थों का अनुमोदन करती है—

भीषास्माद् वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः ।
भीषास्मादग्निश्चन्द्रश्च, मृत्युर्धावति पञ्चमः ।।

अर्थात् जिनके द्वारा नियन्त्रित महा-सत्ता-मय साम्राज्य में प्रति-क्षण वायु, सूर्य, अग्नि, चन्द्र और मृत्यु—ये पाँचो अपने - अपने कर्तव्य में तत्पर हैं अथवा अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, वही पर-ब्रह्म की परा-शक्ति भगवती श्रीचण्डिका हैं ।

'चण्डी' के विभिन्न स्वरूप

नित्यं निर्दोष-गन्धं निरतिशय-सुखं ब्रह्म चैतन्यमेकम्,
धर्मो धर्मीति भेद-द्वितयमिति पृथक्-भूय माया-वशेन।
धर्मस्तत्रानुभूतिः सकल-विषयिणी सर्व-कार्यानुकूला,
शक्तिश्चेच्छादि-रूपा भवति गुण-गणश्चाश्रयस्त्वेक एव॥
कर्तृत्वं तु प्रधर्मी कलयति जगतां सृष्ट्यादि-पञ्च-कृत्ये,
धर्मः पुं-रूपमात्मा सकल-जगदुपादान-भावं बिभर्ति।
स्त्री-रूपं प्राप्य दिव्या भवति च महिषी स्वाश्रयस्यादि-कर्तुः,
प्रोक्तौ धर्म-प्रभेदावपि निगम-विदां धर्मि-वद् ब्रह्म-कोटी॥

अर्थात् एक ही ब्रह्म अनादि - सिद्ध-माया से 'धर्मी' और 'धर्म' के भेद से दो प्रकार का है। सृष्टि के आरम्भ में 'तदैक्षत् बहुस्यां प्रजायेय', 'सोऽकामयत', 'तत्तपो कुरुत' इत्यादि श्रुति-प्रमाणों से जो उसमें ज्ञान, इच्छा और क्रिया-शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वही ब्रह्म का धर्म है।

ब्रह्म धर्मी से पृथक् नहीं है, क्योंकि 'स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च' इस वेद-वाक्य के अनुसार ज्ञान, इच्छा और क्रिया-शक्तियाँ उसके 'स्वाभाविक धर्म' हैं। स्वाभाविक धर्म की ही संज्ञा 'शक्ति' है।

कौलोपनिषद् के 'अथातो धर्म-जिज्ञासा'—इस प्रारम्भिक सूत्र में 'धर्म' शब्द का अर्थ ब्रह्म-धर्म-रूप 'चित्-शक्ति' है, न कि जैमिनि मुनि के अनुसार 'चोदना-लक्षणो धर्म'—धर्म का अर्थ प्रेरणा लक्षण है। इस ब्रह्म-धर्म-रूप चित्-शक्ति के दूसरे नाम 'विमर्श' आदि नागानन्द-सूत्र में किये गये हैं।

इस प्रकार वही धर्म महा-विष्णु और भवानी के भेद से दो प्रकार का होकर संसार की सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान, अनुग्रहात्मक पाँच कार्यों का कर्ता होता है। यही ऊपर लिखे गये दो श्लोकों का तात्पर्य है।

वही विमर्श-स्वरूपा 'चण्डी' चिदादि नामक समष्टि वृत्ति-रूप धर्मात्मक शुद्ध ब्रह्म से अभिन्न ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति और इच्छा-शक्ति-स्वरूपा महा-सरस्वती, महा-काली, महा-लक्ष्मी संज्ञाओं को धारण करती है।

'चण्डी' की उपासना

'चण्डी' की चर्चा अखिल आगम-शास्त्रों में पाई जाती है। 'श्रीमद्-देवी-भागवत' में तो देवों ने देवी की वन्दना में कहा है कि—

चण्डि ! त्वदंघ्रि-जलजोत्थ-रजः - प्रसादै—

ब्रंह्मा करोति भुवनं निखिलं भवादौ ।

शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु

त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ ।।

हे चण्डि ! आपके चरण-कमलों से उठे हुये रजः-कणों के प्रसाद से सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी सम्पूर्ण भुवन को करते हैं और भगवान् विष्णु जगत्-पालन करते हैं तथा शङ्कर जी जगत् का संहार करते रहते हैं। जो मनुष्य आपकी सेवा करता रहता है, वह संसार में अभागा (दुर्भाग्यपूर्ण) रह नहीं सकता ।

'श्रीदुर्गा - सप्तशती' नामक प्रसिद्ध-तम एवं सर्व-मान्य ग्रन्थ-रत्न में इन्द्रादि देवों ने कहा है कि—

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलञ्च ।
सा चण्डिकाऽखिल - जगत्-परिपालनाय
नाशाय चाशुभ - भयस्य मतिं करोतु ।।

जिनके अतुलनीय प्रभाव और बल को भगवान् अनन्त और ब्रह्मा एवं श्री शिव जी भी कहने में असमर्थ हैं, वे जगज्जननी 'चण्डिका' अखिल जगत् के परिपालन के लिये और अशुभ भय के नाश के लिये विचार करें ।

भारतवर्ष में दश महा-विद्याओं और नव दुर्गाओं के रूप में जगन्माता श्री चण्डी की चर्चा प्रचलित है। चण्डी की उपासना में निरत नर ऐहिक तथा पारलौकिक सुखों को अनायास उपलब्ध करता रहता है। देखिये, मर्हषि मार्कण्डेय ने देवर्षि नारद जी से क्या कहा है (मार्कण्डेय कल्प-तन्त्र-तरङ्ग १३, श्लोक ९-१०) :

सपर्यास्ते जगन्मातुश्चण्डिकाया युगे युगे ।
कल्याणानां प्रदानार्थं देवर्षे ! कल्प - पादपः ।।
उपासना-रता लोके लभन्ते पारलौकिकम् ।
ऐहिकं सकलं नित्यं चण्डी सिद्धि-प्रदायिनी ।।

हे देवर्षे ! जगन्माता श्री चण्डिका की सपर्या (पूजा) युग-युग में कल्याणों के प्रदानार्थ कल्प-वृक्ष है। जो इस लोक में श्री चण्डी की उपासना में लगे रहनेवाले लोग हैं, वे सम्पूर्ण पारलौकिक तथा ऐहिक लाभ को निश्चित रूप में पाते रहते हैं क्योंकि 'श्रीचण्डी' सिद्धियों को देनेवाली हैं।

जगज्जननी चण्डी ने स्वयं कहा है ('चण्डी - तन्त्र'—अ० ७, श्लोक २५) :

सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च नरा भुवि ।
मां सेवन्ते तु ये चण्डीं प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ।।

इस पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य सात्त्विक, राजस, तामस ही क्यों न हों, जो मुझ चण्डी की सेवा करते हैं, वे परम-गति को प्राप्त कर लेते हैं।

श्री भैरव जी से तो श्री चण्डी ने यहाँ तक कह दिया है कि (भैरवार्चा-रहस्य–तरङ्ग ५, श्लोक ३)—

चण्डिकायाश्च मे स्वप्ने, भक्तस्य सन्निधिं स्वयम् ।
यमो गत्वा पुनर्नैव, धत्ते जीवनमुत्तमम् ।।

मुझ चण्डी के भक्त के पास स्वप्न में भी स्वयं यमराज जाकर फिर अपना उत्तम जीवन धारण नहीं करते हैं। अर्थात् उनके उत्तम जीवन का अन्त हो जाता है। इसी भय से यमराज जगदम्बा की सपर्या से सम्बद्ध रहनेवाले भक्तों की छाया का स्पर्श नहीं करते हैं; औरों की तो बात ही क्या है !

भगवान् श्री विष्णु ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

पूज्यास्ते देवता-भक्ता, वर्तन्ते पंक्ति-पावनाः ।
गोपायन्ति जगत् सर्वं, चण्डिकार्चा-परायणाः ।।

जो देवताओं के भक्त एवं चण्डी जी की अर्चा में लगे रहनेवाले लोग हैं, वे पंक्ति-पावन हैं और पूज्य हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत् की रक्षा कर रहे हैं।

प्रथमोऽध्यायः

[नारद-शापः]

मार्कण्डेयं मुनि - श्रेष्ठं तपसा हत - किल्विषम् ।
कौशारवो मुनि - श्रेष्ठः पप्रच्छ तपसोनिधिम् ॥१

'कथं मुनि - वर-श्रेष्ठ ! पुराणं चण्डिकाह्वयम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं महा-पातक-नाशनम् ॥२

का चण्डी?शङ्करः कोऽसौ कथं ब्रह्माऽभवत् पुरा ?
दक्षस्य दुहिता ब्रह्मन् ! कथं जाता सती शुभा? ॥३

को दक्ष इति विख्यातः ?कः सूर्यः?कः शशी शुभः?

पावकस्तु कथं जातः ? किं जलं ? कोऽथवाऽनिलः?
एतं मे संशयं ब्रह्मन् ! छेत्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥४

तीर्थानां चैव माहात्म्यं मन्त्राणां च महा-मुने !
यन्त्राणां चापि विप्रर्षे ! कथयस्व ममाग्रतः' ॥५

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

'शृणुष्व मुनि-शार्दूल ! पुराणं चण्डिकाह्वयम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्व-पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥६

कथयामि द्विज - श्रेष्ठ ! पुराणं धर्म - संयुतम् ।
सर्व-संशय - छेत्तारं [१] पुराणं चण्डिकाश्रयम् ॥७

विश्वात्मा भगवान् देवः शेष-शायी जनार्दनः ।
दृष्ट्वा जल-मयं विश्वं नष्ट-स्थावर-जङ्गमम् ॥८

सर्व-लोक-क्षयं चापि चिन्ता-व्याकुलितेन्द्रियः ।
एकोऽहं चिन्तया युक्तो तस्थौ प्रलय-वारिधौ ॥९

चिन्तैव चण्डिका तत्र द्वितीयाऽऽसीन्महा-मुने !
चिरा नित्या च सा ज्ञेया तस्माच्चण्डीं विदुर्बुधाः ॥१०

ॐकार-भूता सा नित्या लोक-त्रय-विनाशिनी ।
चिन्ता-रूपं परित्यज्य चण्डिका चण्डिका मता ।
आद्या-शक्तिरिति ख्याता सेच्छा लोक-विभाविनी ॥११

---

[१] 'पुराण'-शब्दस्य नपुंसक-लिंगत्वात् एतस्य विशेषण-भूतस्य 'सर्व-संशय-छेत्तृ'-शब्दस्य क्लीवता एव साधीयसी स्यात् । एष पुंल्लिङ्गे प्रयोगः आर्षः ।

इच्छयाऽपि समायुक्तो देव - देवो जनार्दनः ।
संसृक्ष्यामि प्रजा येन बहु स्यामेकतोऽप्यहम् ।।१२
रक्षकस्तु स्वयं वष्णुर्लोक-कारी जगत्-पतिः ।
पूर्वं स्वर्ण - मयं चाण्डं निर्ममे विश्व - भावनः ।।१३
तन्मध्ये स्थापयामास ब्रह्माणं भूत-कारिणम् ।
तस्मात् क्रोधाच्च सम्भूतो रुद्रो लोक-विनाशनः ।।१४
पद्मासनस्थं तं दृष्ट्वा ब्रह्माणं भूत - कारिणम् ।
रुद्रः क्रोध - समाविष्टोऽप्युवाच वचनं मुने !
को भवानिह सम्प्राप्तः कथयस्व यथा - तथम् ।।१५
रुद्रस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोक-पितामहः ।
उवाच वचनं चैव को भवानिह सङ्गतः ।।१६
अहं पूर्वमिहासं वै जगाद वचनं हरः ।
नेत्युवाच विरञ्चिस्तु मया जातस्त्वमर्भकः ।।१७
अहं पूर्वमहं पूर्वं लोकेऽस्मिन् वदतोस्तयोः ।
प्रवृत्तं दारुणं युद्धं सर्व - लोक - भयावहम् ।।१८
रुद्रः क्रोधाभिभूतस्तु शूलेनाभिजघान तम् ।
नाभौ चैवोदरे चापि वक्षः - स्थाने द्विजोत्तम ! ।।१९
शूल-घाताद् विनिष्क्रान्ता तिस्रो धारा महा-मुने !
एका पातालगा धारा सर्वस्य मुख - वासिनी ।।२०
द्वितीयाऽपि मुनि-श्रेष्ठ ! गगनस्था च सा शुभा ।
तृतीया या विनिष्क्रान्ता रुद्रस्य च करे स्थिता ।।२१
ब्रह्म-हत्या च सा प्रोक्ता रुद्र-पाणि-गता मुने !
कपाल - रूपमास्थाय शङ्करस्य करे स्थिता ।।२२
रक्त-मज्जा-वसा-मांसं सा स्रवन्ती द्विजोत्तम !
तदा प्रभृति रुद्रोऽसौ कपालित्वमवाप वै' ।।२३

।। मैत्रेय उवाच ।।

'कथं दक्षो मुनि-श्रेष्ठ ! सम्भूतोऽपि प्रजा-पतिः ?
कथयस्व यथा - तथ्यं संशयो मे महानभूत्' ।।२४

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

'स्वायम्भुवो मनुर्नाम बभूव नृप - सत्तमः ।
उत्तान-पादस्तत्-पुत्रः तत्-पुत्रस्तु ध्रुवो महान् ।। २५

ध्रुवाद् धरो धराच्चापि प्राचीन-बर्हिर्भू-पतिः ।
प्राचीन-बर्हिषः पुत्राः दश चैव प्रचेतसः ॥२६

समान - कर्म - निरताः सर्वे वेद - विशारदाः ।
गतास्ते तपसे ब्रह्मन् ! समुद्र - सलिले शुभे ॥२७

सलिलाच्चापि समुत्तस्थुः तेजो-युक्तास्तपो-धनाः ।
ददृशुः पृथिवीं सर्वां वृक्ष-वीरुत्-समाकुलाम् ॥२८

मुखान् मारुतमुत्सृज्य नेत्राद् वह्निं समासृजन् ।
भस्मीकर्तुं प्रवृत्तास्ते वृक्षान् सर्वान् महा-बलाः ॥२९

दह्यमानास्तु वृक्षास्ते कन्यामादाय सुन्दरीम् ।
गृह्यतां भो नृप-सुता ! इयं भार्या मनोरमा ।
मारिषा नाम विख्याता जगदुस्तान् द्विजोत्तम ! ॥३०

वृक्षाणां वचनाद् ब्रह्मन् जगृहुस्तां नृपात्मजाः ।
तस्यामुत्पादयामासुर्दक्षं त्वाद्यं प्रजा - पतिम् ॥३१

दश-तेजः-समुद्भूतो दक्षः परम - धार्मिकः ।
ससर्ज स सुतान् दक्षो मानसांश्चैव तान् बहून् ॥३२

वञ्चिता नारदेनापि गताः सर्वे दिशो दश ।
ततः सिसृक्षुर्धर्मात्मा दक्षः पर - पुरञ्जयः ॥३३

दश-पुत्र - सहस्राणि मानसानसृजत् पुनः ।
पृथिवीं कर्तुमेकान्तामायातो नारदः पुनः ॥३४

किं वै कुरुथ यूयं हि नारदेन प्रणोदिताः ।
ऊचुस्ते तं मुनिं ब्रह्मन् ! करिष्यामः प्रजास्त्विमाः॥३५

विहस्य नारदः प्राह वचनं मुनि - पुङ्गवः ।
भ्रातरस्ते गता बालाः प्रजार्थे वै दिशो दश ॥३६

नारदस्य वचः श्रुत्वा भ्रातॄणामेषणे गताः ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥३७

नारदेनापि ते नष्टा दक्ष - पुत्रा महा-बलाः ।
तान् नष्टांस्तु ततः श्रुत्वा दक्षः प्राचेतसो मुने ॥३८

शशाप नारदं क्रुद्धः स्थितिस्ते कलहं विना ।
न भविष्यति लोकेऽस्मिन्नटमानस्य सर्वदा ॥३९

॥ इत्याद्ये श्रीचण्डी-पुराणे नारद-शापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

[सती-देह-परित्यागः]

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

नष्टान् पुत्रांस्ततो दृष्ट्वा दक्षः परम-धार्मिकः ।
प्रजाः कथं संसृक्ष्यामि चिन्ता-व्याकुलितेन्द्रियः ।।१

ध्यात्वा नारायणं देवं त्वादि-देवं सनातनम् ।
तुष्टाव गीर्भिरेताभिर्दीनानां शरणं विभुम् ।।२

'नमो भगवते तुभ्यं ज्ञान - मुद्राय वेधसे ।
लोक-नाथाय नाथाय देव - देवाय धारिणे ।
नारायणायानन्ताय पद्म - नाभाय कारिणे ।।३

भूतेशाय च भूताय ज्ञान - विज्ञान - साक्षिणे ।
अरूपानेक - रूपाय निर्गुणाय गुणाय च' ।।४

एवं स्तुतुस्तदा तेन दक्षेणामित - तेजसा ।
उवाच वचनं देवो भगवान् भूत - भावनः ।।
'करिष्यामि हितं तेऽद्य गृहं गच्छ प्रजा-पते !' ।।५

भगवानपि विश्वात्मा देव-देवो जनार्दनः ।
सस्मार चण्डिकां देवीं लोकानां जननीं पराम् ।।६

'नमो देव्यै च नाथायै कल्याण्यै ते नमो नमः ।
नमो जगत् - प्रतिष्ठायै मात्रे तुभ्यं नमो नमः ।।७
नमो लक्ष्म्यै च धात्र्यै च शर्वाण्यै ते नमो नमः ।
नमो देव्यै च सिद्ध्यै च ऋद्ध्यै देव्यै नमो नमः ।।८

उप-श्रुत्यै च दिव्यै च मुक्तिदायै नमो नमः ।
भुक्तिदायै नमस्तेऽस्तु चायुर्दायै नमो नमः ।
सरस्वत्यै नमस्तुभ्यं नमस्ते जगदम्बिके ! ।।९

माता त्वमेवाथ स्वसा त्वमेव,
भार्या त्वमेवं हि सुता त्वमेव ।
त्वमेव नाथा च हिता प्रभाविणी,
त्वमेव नारी पुरुषस्त्वमेव' ।।१०

इत्थं स्तुता तेन जनार्दनेन,
स्वभावतो वाक्यमुवाच देवी ।
'सुता भविष्यामि जनार्दनाहम्
सती च नाम्ना प्रथिता प्रजा-पतेः' ।।११

वामांगुष्ठाच्च सा जाता शत-रूपा द्विजोत्तम !
दक्ष-भार्या च सु-श्रोणी रूप-यौवन-शालिनी ।।१२

तस्यामुत्पादयामास दक्षः कन्या-सुषष्टिकम् ।
तासां मध्ये तु या ज्येष्ठा सा सती परिकीर्तिता ।।१३

भवाय प्रददौ दक्षः कन्यां तां रूप - शालिनीम् ।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।।१४

सप्त-विंशति सोमाय द्वे चैवारिष्ट - नेमये ।
पञ्च कन्या ददौ दक्षस्त्वत्रेश्चापि द्विजोत्तम ! ।।१५

द्वे कन्ये मुनि - शार्दूल ! हरये स ददौ पुनः ।
एवं विभज्य धर्मात्मा दक्षश्चैव प्रजा-पतिः ।।१६

यज्ञं चकार विप्रर्षे ! सर्व - भूत - हिते रतः ।
समाहूय सुताः सर्वा जामातॄंश्चैव सर्वशः ।।१७

स-भार्यं शङ्करं त्यक्त्वा यज्ञार्थे मुनि-सत्तम !
सर्वतः श्रूयते ब्रह्मन् ! दीयतां दीयतामिति ।
भुज्यतां भुज्यतां चापि मखे तस्मिन् द्विजोत्तम !
श्रुत्वा मखं पितुर्वाक्यं सती भर्तारमब्रवीत् ।।१८

सती उवाच

गमिष्यामि पितुर्गेहं त्वमाज्ञां दातुमर्हसि ।
मखं द्रक्ष्यामि देवेश ! स्वसॄः पश्यामि वै मुने ! ।।१९

हर उवाच

इच्छां कुरु तथा भद्रे ! नाशुभं ते भविष्यति ।।२०

एवं निवारिता तेन भवेनापि स-तेजसा ।
प्रणिपत्य पुनश्चैव देवी वचनमब्रवीत् ।।२१

सती उवाच

पितुर्गेहं गमिष्यामि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
सर्व-तीर्थ-मयी गङ्गा सर्व - देव - मयो हरिः ।।२२

यथा गङ्गा च तीर्थानां लोकानां जननी तथा ।
देवानां च यथा विष्णुस्तथा लोके पिता प्रभुः ।
भविष्यति यथाऽऽदिष्टं त्वमाज्ञातुं ममार्हसि ।।२३

आज्ञप्ता च तदा तेन शम्भुना प्रभुणा पुनः ।
प्रावृता सा गणैः सार्धमाजगाम पितुर्गृहम् ।।२४

यज्ञवाटं ददर्शाथ देव - दानव - संयुतम् ।
चिन्तयामास सा देवी सती परम-दुर्मनाः ।।२५

आमन्त्रिताः सुराः सर्वे सहजाः जामातरस्तथा ।
एको हरो न चाहूतः सर्व - देव - नमस्कृतः ।।२६

यज्ञागारं प्रविश्याथ सती दृष्ट्वा च पावकम् ।
क्रोधाभिभूता सा ब्रह्मन् ! प्रविवेश हुताशनम् ।।२७

भस्मी-भूता क्षणेनैव पतिं ध्यात्वा मनस्विनी ।
भस्मी-भूतां तु तां दृष्ट्वा गणः क्रोध-समन्वितः ।।२८

।। इत्याद्ये श्रीचण्डी-पुराणे सती-देह-परित्यागो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।

तृतीयोऽध्यायः

[दक्ष-चरितम्]

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

आजगाम गणस्तत्र यत्र देवो महेश्वरः ।
कथयामास तद्-वृत्तं यथा देवी दिवं गता ॥१
श्रुत्वा तां विरतां देवीं रुद्रः क्रोध-परिप्लुतः ।
जटामुत्पाट्य शिरसो भूमौ चिक्षेप तां रुषा ॥२
उत्थितः पुरुषो ब्रह्मन् ! शूल-पाणिस्त्रि-लोचनः ।
उवाच किं करोमीह क्षिप्रं ज्ञापय मां विभो ॥३

॥ ईश्वर उवाच ॥

वीर-भद्र ! महा-बाहो ! शृणु मे परमं वचः ।
हन्यतां सबलो दक्षो मखश्चापि विनाश्यताम् ॥४
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा वीर-भद्रो गणैर्वृतः ।
यज्ञ-वाटं समागत्य दक्षं दृष्ट्वा महा-बली ॥५
देव--दैत्य-गणैर्युक्तं प्रजा-नाथं प्रजा-पतिम् ।
वीर-भद्रो महा-तेजाः क्रोध-संरक्त-लोचनः ॥६
दक्षस्य सत्वरं वीरः शिरः कायादपाहरत् ।
खड्गेन च शिरो ब्रह्मन् ! रुषा वह्नौ समाक्षिपत् ॥७
पूष्णो दन्तान् समुत्पाट्य वीर-भद्रो महा-बलः ।
भगस्य नेत्रे विप्रेन्द्र नाशयामास रोषतः ॥८
जगाम वीर-भद्रोऽथ ईश्वराय निवेदितुम् ।
ददर्श देव-देवेशं शोकेनोद्विग्न-मानसम् ॥९
प्रणिपत्य यथा-न्यायं शङ्करं भूत-नायकम् ।
कथयामास तत्-सर्वं यथा दक्षो निपातितः ॥१०
हते दक्षे द्विज-श्रेष्ठ ! शोक-व्याकुल-लोचनाः ।
देवास्तत्र समाजग्मुः प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥११

॥ देवा ऊचुः ॥

नमः शिवाय देवाय भूत-नाथाय वै नमः ।
नमो रुद्राय नाथाय देव-देवाय ते नमः ॥१२
नमः कालाय पालाय शङ्कराय नमो नमः ।
नमस्त्रिशूल-हस्ताय पशूनां पतये नमः ॥१३

दिग्वाससे नमस्तुभ्यं नमस्ते गज - चर्मणे।
ईश्वराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते भग-नेत्र-हन् ॥१४
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु वृद्धोक्षाय नमो नमः।
नमः पिनाक - हस्ताय अग्नि - नेत्राय वै नमः ॥१५
नमो हराय देवाय दक्ष - यज्ञ - विनाशिने।
नमस्ते त्रिपुरघ्नाय नमो भूताधिपाय च ॥१६
नमो देवाधि - देवाय नमः कैलास - वासिने।
नमो नाथाय क्रोधाय नमः सर्व - क्षयाय च ॥१७
भीमाय च नमस्तुभ्यं विरूपाक्षाय वै नमः।
प्रसीद देव - देवेश ! प्रपन्नार्त्ति - हरो भव ॥१८
इत्थं श्रुत्वा तु देवानां वचनं मुनि - पुङ्गव !
त्यक्त्वा क्रोधं महा-देवः प्रत्युवाचाथ तान् प्रति।
किं कुर्यां वः प्रियं देवाः सत्यमेतन्न संशयः ॥१६

॥ देवा ऊचुः ॥

नष्टे दक्षे प्रजा-नाथे ! कथं विश्वं प्रवर्तते ?
तत् कुरुष्व महा-देव ! यथा दक्षो हि जीव्यते ॥२०
देवैः सह समागत्य महा - देवो महा - मतिः।
यज्ञ-वाटं द्विज-श्रेष्ठ ! दृष्ट्वा दक्षं निपातितम् ॥२१
कायं तस्यापि दक्षस्य न शीर्षं ब्राह्मणोत्तम !
ददर्श निहतं दक्षं महा - देवो महा - मनाः ॥२२
अजस्य च शिरश्छित्त्वा तस्य काये निधापितम्।
समुत्थितस्ततो दक्षो महा - देवेन वै मुने ! ॥२३
महा-देवोऽपि विप्रर्षे ! चिन्ता-व्याकुल-लोचनः।
हा सती ! हा सती नित्यं चिन्तयत्यनिशं हरः ॥२४
सत्या विरहजाद् दुःखान्निमग्नः शोक-सागरे।
मोहितः शङ्करो ब्रह्मन् ! स शश्वन्न्यपतत् क्षणात् ॥
अन्तर्हिता नदी श्रेष्ठा ब्रह्म - हत्या - समन्विता ॥२५
पतितं शङ्करं दृष्ट्वा ततोऽभूद् द्विज - सत्तम।
शोकाभि-पीडिता नित्यं तेन चान्तर्हिता नदी ॥२६
दक्षस्य चरितं ये वै शृण्वन्ति सततं नराः।
सर्व-पाप-विनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ॥२७
एतत् ते कथितं ब्रह्मन् ! चरितं परमाद्भुतम्।
अतः परं द्विज-श्रेष्ठ ! भूयः किं ददाम्यहम् ॥२८

॥ इत्याद्ये चण्डी-पुराणे दक्ष-चरितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

[मधु-कैटभ-वधः]

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कथं समभवत् काली पुनरेव वदस्व नः ।
यथा साऽजायत ब्रह्मन् ! गिरि - राज-सुता शुभा ॥१
यथा तां प्राप्त-वान् रुद्रो भार्यां देव-स्वरूपिणीम् ।
एतन्मे संशयं ब्रह्मन् ! विस्तरेण तपोधन ! ॥२
कथयस्व कथां पुण्यां सर्व - पाप - हरीं शुभाम् ।
कामदां धर्मदां चैव मोक्षदामर्थदामिह ॥३
जाता हिम - वतो गेहे काली दैत्य - विनाशिनी ।
यथा सा घातयित्वा तु महा - कायं महा-बलम् ॥४
दैत्य - राजं महेष्वासं महिषं च दुरासदम् ।
शुम्भं निशुम्भकं चैव रक्त - बीजं महा - बलम् ॥५
धूम्राक्षं च ततो घोरं चण्ड-मुण्डं बलाधिकम् ।
एष मे संशयो ब्रह्मन् ! कथयस्व यथा - तथम् ।
श्रोतुमिच्छामि वै नित्यं विस्तरेण तपोधन ! ॥६

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

कथयामि कथामेतां सर्व - पातक - नाशिनीम् ।
पुण्यदां प्रीतिदां लोके कामदां शत्रु-नाशिनीम् ॥७
रम्भश्चैव करम्भश्च दैत्य - राजौ बभूवतुः ।
तेपतुस्तौ महा - वीरौ गङ्गा - तीरे द्विजोत्तम ! ॥८
करम्भोऽपि महा-वीर्यो गङ्गा-मध्ये न्यमज्जत ।
एतस्मिनेव काले तु महा-ग्राहः समागतः ॥९
गृहीत्वा दैत्य - राजं च जगामाथ गृहं द्विज !
चखाद नक्रस्तं नूनं दैत्य - राजं महा - बलम् ॥१०
मृते भ्रातरि दैत्येन्द्रे रम्भोऽपि सु-महा-यशः ।
खड्गमादाय विप्रेन्द्र ! शिरश्छेत्तुं समुद्यतः ॥११

एतस्मिन्नन्तरे चापि ब्रह्मा लोक - पितामहः।
वारयित्वा जगादैनं वरं वरय सुव्रत ! ।।१२

।। रम्भ उवाच ।।

यदि तुष्टोऽसि देवेश ! पुत्रं देहि महा - बलम् ।।
त्रैलोक्य - विजयी पुत्रस्त्वत्-प्रसादान्न संशयः ।।१३

तथेत्युक्त्वा तदा ब्रह्मा ब्रह्म - लोकं न्यवर्तत।
जज्ञिरे तनया राज्यां त्रयस्तस्य महा - बलाः ।।१४

ज्येष्ठस्तु महिषो नाम घोराख्यश्च ततः परः।
नमरश्च महा - तेजः सर्व - देव - जयो द्विज ! ।।१५

हते दैत्येश्वरे ब्रह्मन् ! महा - बल - पराक्रमे।
कैटभे तु महा - वीरे धरिणी विगत - ज्वरा ।।१६

।। मैत्रेय उवाच ।।

कथं तु निहतौ दैत्यौ महा - बल - पराक्रमौ।
ख्यातौ दैत्येश्वरौ चैव नामतो मधु - कैटभौ।
कस्य पुत्रौ महा - वीरौ दुर्जयौ तौ दुरासदौ ! ।।१७

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

प्रलये च पुरा ब्रह्मन् ! योग - शायी जनार्दनः।
तस्य कर्ण - मलोद्भूतावसुरौ मधु - कैटभौ ।।१८

नाभि-पद्मोद्भवं दृष्ट्वा ब्रह्माणं भूत-कारिणम्।
क्रोध - युक्तौ महा - वीरौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ।।१९

एवं व्यवसितौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोक-पितामहः।
तौ वै बलाधिकौ मत्वा चिन्ता-व्याकुल-लोचनः ।।२०

एकोऽहं बलिनावेतौ हन्तु - कामौ दुरासदौ।
कथं घोरौ महा-वीरौ वध्येतां तौ बलाधिकौ ? ।।२१

एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी।
'स्तुहि त्वं देव-देवेशं त्वादि-देवं जनार्दनम्' ।।२२

श्रुत्वा देवेरितां वाणीं ब्रह्मा लोक - पितामहः।
देव-देवं जगन्नाथं मनसाऽचिन्तयत् प्रभुः ।।२३

॥ ब्रह्मोवाच ॥

'नमोऽनन्ताय देवाय केशवायादि - चक्रिणे ।
सर्वगायादि - देवाय भूतानां पतये नमः ॥२४

नमः कमल - नाभाय नमस्ते जल - शायिने ।
नमः कमल - नेत्राय नमः पङ्कज - मालिने ॥२५

नमः कृष्णाय रामाय हरये माधवाय च ।
नमो भगवते तुभ्यं यादवेन्द्राय वै नमः ॥२६

नमो गरुड - नाथाय नमस्ते शेष - शायिने ।
नमस्ते चक्र - हस्ताय वामनाय नमो नमः' ॥२७

एवं स्तुतस्तदा तेन ब्रह्मणा लोक - कारिणा ।
उवाच वचनं देवो भगवान् जगदीश्वरः ॥२८

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

'मा भैस्त्वं कमलोद्भूत ! हनिष्ये दानवोत्तमौ ।'
ताभ्यां समं च युयुधे भगवान् रिपु-नाशनः ॥२९

पञ्च-वर्ष-सहस्राणि युद्धमासीत् सु - दारुणम् ।
ततश्चिन्ता-परो देवस्त्वादि-देवो जगत् पतिः ॥३०

'कलहे मे दुरात्मानावसुरौ बलवत्तरौ ।'
एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ।
'देवीं स्तुहि जगन्नाथ ! सिद्धिस्ते भविता ध्रुवम्' ॥३१

॥ श्री भगवानुवाच ॥

'कमलाक्षि नमो देवि ! नमः पङ्कज - वासिनि !
नमः श्रियै सरस्वत्यै नमः कल्याण - दायिनि ॥३२

पराऽसि परमात्माऽसि देवि ! त्वं सर्व-मङ्गला ।
भूत-धात्री जगद्धात्री ध्वान्ता सर्वस्य भाविनी ॥३३

श्रीस्त्वमेव सदा लोके ह्रीस्त्वं वै सर्व-कारिणी ।
स्वाहा त्वं च सुधा त्वं च धृतिः कीर्तिस्तथा 'परा ॥३४

मोहिनी योग-निद्रा त्वं ज्योती-रूपा सनातनी ।
परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥३५

सन्ध्या-रूपा च नित्या च रात्रि-रूपा विभाविनी ।
ॐकार-रूपाऽसि सदा निर्गुणा सगुणा शुभा' ॥३६

एवं स्तुता तदा तेन देव - देवेन विष्णुना ।
प्रत्यक्षी-भूय सा नित्या योग - निद्रा सनातनी ।।३७

उवाच वचनं सा हि 'करिष्यामि हितं तव ।
मोहयित्वाऽसुरौ चापि विख्यातौ मधु-कैटभौ' ।।३८
तौ तदाऽति-बलोन्मत्तौ जगन्माया विमोहितौ ।

।। मधु-कैटभावूचतुः ।।

'वरं ब्रूहि महा - वीर ! यत्ते मनसि वर्तते ।
युद्धेनावां त्वया तुष्टौ दुर्लभं यज्जगत्-त्रये ।
दानवान् न हि श्रद्धेहि वरं दद्याव दुर्लभम्' ।।३९

।। श्रीभगवानुवाच ।।

'तुष्टौ चेन्मे युवां भाव्यौ मम वध्यावुभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र एतदेव वृतं मया' ।।४०

कैटभावूचतुर्वीरौ 'श्लाघ्यस्त्वन्मृत्युरावयोः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता' ।।४१

एवं दिष्टस्तु दैत्याभ्यां साध्य - सिद्धि जनार्दनः ।
चक्रेण क्षुर - धारेण चकर्त शिरसी तयोः ।।४२

भूयः सा चण्डिका नित्या विष्णुना संस्तुता पुरा ।
यथा साऽघातयद् दैत्यं महिषं कथयामि ते ।।४३

।। इति श्रीचण्डी-पुराणे मधु-कैटभ-वधो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।

पञ्चमोऽध्यायः

[घोर-वधे नदी-वर्णनम्]

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

ततो दैत्य-गणाः सर्वे महा - बल - पराक्रमाः ।
महिषं तु पुरस्कृत्य ययुस्ते विमलायुधाः ॥१

श्रुत्वा दैत्य - गणान् सर्वानागतानुद्यतायुधान् ।
शक्रोऽपि सु - महा - तेजा देवानाहूय चाब्रवीत् ॥२

॥ शक्र उवाच ॥

'वृन्दारका महा- वीर्या सोमार्क - प्रमुखा गणाः ।
शृण्वन्तु मद्-वचोऽधीशा महा-कल्याण-दायकम् ॥
एकी-भूताः स्थ चेद् देवास्तदा जेष्यथ दानवान्' ॥३

शक्रस्य वचनाद् देवाः सायुधाश्च स - वाहनाः ।
आयोधनं समायातास्तूर्णं शक्र - पुरोगमाः ॥४

ततो युद्धमभूद् भूयः सर्व - लोक - क्षयावहम् ।
जित्वा देव-गणान् सर्वान् शुशुभे दैत्य-पुङ्गवः ॥५

ततो पराजिता देवा मर्त्य - भूताश्च भू-तले ।
विचेरुश्छद्म-रूपेण निह्नुवानाः स्वकां तनुम् ॥६

दुःखीयन्ति च ते सर्वे शक्राद्या देव - सत्तमाः ।
शरणं ब्रह्मणो जग्मुर्हत - वीर्या निरायुधाः ।
कथयामासुरित्येवं महिषस्य विचेष्टितम् ॥७

'मर्त्य-भूता वयं ब्रह्मन् ! विचरामो मही - तले ।
किं कुर्मः क्व च गच्छामो महिषेण निराकृताः?'॥८

देवानां वचनं श्रुत्वा पद्म - योनिः प्रजा-पतिः ।
दुःस्थितिं वीक्ष्य चैतेषां चिन्ता-व्याकुल-लोचनः ।
मनसा चिन्तयामास देव - देवं महेश्वरम् ॥९

॥ ब्रह्मोवाच ॥

'नमः शिवाय देवाय देव - देवाय ते नमः ।
नमो घोराय भीमाय नमः कैलास - वासिने ॥१०

नमः पिङ्गल - नेत्राय नमस्ते विश्व - रूपिणे ।
नमो हराय कालाय भीम - रूपाय ते नमः ।।
त्रिपुरघ्नाय देवाय तारकघ्नाय वै नमः' ।।११

एवं स्तुतस्तदा तेन ब्रह्मणा लोक - कारिणा ।
उवाच वचनं देवो महा - देवो मही - पतिः ।।१२

'देवानां रक्षणार्थं हि ब्रह्मन् ! व्रज शरणं हरेः ।
भगवानपि देवेशः स तेऽभीष्टं विधास्यति' ।।१३

इति श्रुत्वा वचो ब्रह्मा जगामाथ हरिं प्रति ।
ददर्श लोक - नाथेशः क्षीरोदं हि महार्णवम् ।।१४

इन्द्रो ब्रह्माऽथ रुद्रोऽपि देवाः सर्वे द्विजोत्तम !
स्तुतिं प्रचक्रमुः कर्तुं देव - देवस्य चक्रिणः ।।१५

।। देवा ऊचुः ।।

'नमो भगवते तुभ्यं देव - देवाय चक्रिणे ।
हरये वासुदेवाय हृषीकेशाय शाश्वते ।।१६

माधवाय नमस्तुभ्यं जगन्नाथाय वै नमः ।
गोविन्दायादि - देवाय निर्गुणाय गुणाय च ।।१७

मधु - सूदनायानन्ताय निजाय परमात्मने ।
नमस्ते पद्म - नाभाय नमः सागर - शायिने' ।।१८

एवं स्तुतस्तदा देवैर्भगवान् विश्व - भावनः ।
अविर्बभूव विश्वात्मा देवानां पुरतो हरिः ।।१९

।। श्रीभगवानुवाच ।।

'सन्तुष्टोऽस्मि वचोभिर्वो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ?
उच्यताममराः ! शीघ्रमाचरिष्याम्यसंशयम् ।।२०

लोकानां पालनं चैव धारणं सर्व - जीविनाम् ।
मदधीनं विद्यते चैतद् दुष्टानां चैव नाशनम्' ।।२१

।। देवा ऊचुः ।।

'महिषासुराख्य-दैत्योऽयं जातः कश्चिन्मही-तले ।
बाध्यन्त साधवस्तेन लोप्यन्ते धार्मिक-क्रियाः ।।२२

विजितास्तेन दुष्टेन संग्रामे धर्षिता वयम् ।
शरणं ते समायाताः वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ।।२३

देवानां वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा दैत्य-विचेष्टितम् ।
चुक्रोध हरिरसुराय सदा भूत - हिते रतः ।।२४

क्रुद्धाद् विश्वात्मनो विष्णोः समुद्भूताऽथ चण्डिका ।
कालिका कृष्ण - वर्णा च महा - बल - पराक्रमा।।
लोकानां जननी सैव विश्व-धात्री विभाविनी ।।२५
दृष्ट्वा देवास्तु तां देवीं ज्योती-रूपां सनातनीम् ।
आयुधानि ददुस्तस्यै हृष्टाः सर्वे पृथक्-पृथक् ।।२६

देवेशस्तु ददौ तस्यै चक्रं दैत्य - विनाशनम् ।
त्रिशूलं तु ददौ तस्यै हरस्त्रिपुर - नाशनः ।।२७
कमण्डलुं जलाक्षेपं ददौ तस्यै पितामहः ।
वज्रं च दत्तवान् तस्यै सहस्राक्षो महा - मतिः ।।२८
चापं शुभं दृढं तस्यै ददौ चैव हुताशनः ।
मारुतोऽप्यददत् तस्यै बाण - पूर्णं तथेषुधिम् ।
अस्त्राण्यनेक - रूपाणि कवचं चाप्यभेदनम ।।२९
अष्टादश-भुजा देवी महा - माया महा - स्वना ।
सिंह-नादं चकारोच्चैः सर्व-लोक - भयङ्करम् ।।३०
तस्या नादेन घोरेण पूरितं हि जगत्-त्रयम् ।
तं श्रुत्वा तु महा-नादं सर्वे दैत्या रुषान्विता ।।३१
आगत्य कथयामासुर्महिषं हि दुरासदम् ।
'किमिदं गर्जितं राजन् ! श्रूयते च भय-प्रदम् ?'।।३२

।। महिषासुर उवाच ।।

'घोर, घोर महा-बाहो ! स्व-सैन्य-परिवारितः ।
स्वनस्य कारणं विद्धि शीघ्रमागमनं कुरु' ।।३३
सहासमागतो घोरो विन्ध्यं गत्वा महा - गिरिम् ।
तत्र दृष्ट्वा च तां देवीमष्टादश-भुजान्विताम् ।।३४
दिव्य - रूपां हरेर्मायां सिंहारूढां मनोरमाम् ।
महा-बलां महोत्साहां सर्वाभरण - शोभिताम् ।।३५
गर्जमानां च तां ज्ञात्वा महा - भयमुपागतः ।
दूतं सम्प्रेषयामास महिषाय निवेदितुम् ।।३६

स दूतो वर्णयामास देव्याश्चण्डं तु गर्जितम् ।
अष्टादश - भुजा देवी महा - बल - पराक्रमा ।।३७
सिंहारूढा च कृष्णा च काली देव-स्वरूपिणी ।
गर्जमाना स्थिता चण्डी घोरा विन्ध्य-शिलोच्चये ।।३८
तच्छ्रुत्वा महिषो ब्रह्मन् ! वीरः क्रुद्धो महा-बलः ।
घोराय प्रैषयद् दूतं दुन्दुभिं च महा-मतिम् ।।३९
'दुन्दुभे ! गच्छ तत्र त्वं यत्र घोरो व्यवस्थितः ।
तां समानय हे वीर ! नयेन च बलेन च ।।४०
एवं ब्रूयाश्च घोराय यथा-कार्यं तथा कुरु ।
महिषस्य वचः श्रुत्वा समायातोऽथ दुन्दुभिः ।।४१

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

दुन्दुभेर्वाक्यमाकर्ण्य घोरः क्रोध - परिप्लुतः ।
रुरोध पर्वत-श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरि - वरोत्तमम् ।।४२
तत्र सा चण्डिका क्रुद्धा महा - बल - पराक्रमा ।
सोग्र-रावं विनिर्मुक्तैर्बाणैर्दैत्यान् ममर्द च ।।४३
मर्द्यमानां च तां सेनां दृष्ट्वा घोरो महा-बलः ।
क्रोधाविष्टैर्वृतो दैत्यैस्तां रुरोध समन्ततः ।
ववर्षुस्ते ततो दैत्या बाणानाशी-विषोपमान् ।।४४
शरानापततो दृष्ट्वा चण्डिका चण्ड-विक्रमा ।
चक्रेण क्षुर-धारेण द्विधा चक्रे महा - बला ।।४५
बाणांस्तान् निष्फलान् दृष्ट्वा सर्वे घोर-रवास्तदा ।
चिक्षिपुर्वै रुषोन्मत्ता बाणाञ्छत - सहस्रशः ।
बाण-वृष्ट्या द्विज-श्रेष्ठ !क्षतिमाप न चाम्बिका ।।४६
ततो भगवती क्रुद्धा चण्डिका दैत्य-घातिनी ।
नाशयामास बाणौघान् नीहारानिव भास्करः ।।४७
घातयित्वाऽथ तान् दैत्यान् योद्ध-कामानुपागतान् ।
रुधिरौघेन सञ्जाता नदी प्राण - भयावहा ।।४८
वेताल-गण-सङ्कीर्णा शिवा - शत - निनादिनी ।
दुस्तरा यक्ष-गन्धर्वैः पिशाचैः राक्षसान्विता ।।४९
शोणितौघा महा-भीमा महा-भय-करी मुने !
तस्यां तरन्ति ये दैत्या भग्न-पाद-शिरो-भुजा ।।५०
ईदृशीं वै नदीं दृष्ट्वा घोरः संरक्त-लोचनः ।
आगतोऽथ महा-दैत्यो यत्र कात्यायनी स्थिता ।।५१

।। इत्याद्ये श्रीचण्डी-पुराणे घोर-वधे नदी-वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।

षष्ठोऽध्यायः

[अथ घोर-वधः]

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

ततः क्रुद्धो महा-वीरो घोरो भीम - पराक्रमः ।
सैन्यैश्च बहुभिर्घोरैः कोटि - कोटिभिरन्वितः ॥१

हस्त्यश्व-रथ - संयुक्तैः पत्तिभिश्च समाकुलैः ।
आवृतो रिपुहा वीरो घोरः पर - पुरञ्जयः ॥२

तामुत्तीर्य नदीं घोरां घोरो घोर - पराक्रमः ।
दृष्टवान् चण्डिकामुग्रामष्टादश - भुजान्विताम् ॥३

ततः प्रववृते युद्धं सर्व - लोक - क्षयङ्करम् ।
रुरोध चण्डिकां घोरो नीहारो भास्करं यथा ॥४

दृष्ट्वा हाहा-रवं चक्रुः दिविस्था मुनि-सत्तम !
ततो भगवती क्रुद्धा चण्डिका भीम - विक्रमा ॥५

वारयामास तान् सर्वान् दैत्यान् योद्धुमुपागतान् ।
दुर्दर्शा देव - दैत्यानां चण्डिका चण्ड - विक्रमा ॥६

मध्यन्दिन-गतोऽर्चिष्मांस्तथा सा चण्डिका बभौ ।
घोरोऽपि च महा-वीर्यः सर्व - सैन्य - समन्वितः ॥७

शर-वृष्टिभिराच्छाद्य चण्डिकां चण्ड-विक्रमाम्,
यथा मेरु - गिरेः शृङ्गं तोय - वर्षेण तोयदः ।
ववर्ष बाण - वर्षेण घोरः पर - बलार्दनः ॥८

ततः सा चण्डिका ब्रह्मन् ! सर्वान् बाणानपाहनत् ।
द्विधा चक्रे च चक्रेण तान् सर्वानागतान् पुनः ॥९

तान् द्विधा च कृतान् दृष्ट्वा घोरः कोपं परं ययौ ।
व्याजहार ततो वाक्यं दैत्यानां हित-काम्यया ॥१०

एषा वध्य - तरा देवी घोर - रूपा भयङ्करा ।
घोरस्य वचनं श्रुत्वा सर्व - दैत्य - भटा मुने ! ॥११

रुरुधुस्तां ततो दैत्याः सर्वे घोर - मुखा मुने !
अलात - चक्र - प्रतिमा दृश्यन्ते दानवा युधि ॥१२

ततः क्रुद्धा भगवती चण्डिका चण्ड - विक्रमा।
दारयामास तान् सर्वान् नीहारानिव भास्करः ॥१३

दुर्निरीक्षाऽभवत् साऽपि चण्डिका भीम-रूपिणी।
मध्यन्दिन-गतोऽर्चिष्मांस्तथा भाति महा-बला ॥१४

पुनः क्रुद्धो महा - घोरो घोरो घोर - पराक्रमः।
आवृतो बहुभिर्वीरैर्युद्धाय कृत - निश्चयः ॥१५

स्व-धनुः स्फारयित्वा तु बाणानादाय सत्वरः।
विव्याध तां तदा देवीं महा-मायां महा-बलाम् ॥१६

तान् गृहीत्वा ततो देवी चण्डिका क्रोध-मूर्च्छिता।
चिक्षेप बाणांस्तांश्चैव द्विधा कृत्वा पुनः पुनः ॥१७

पुनर्घोरो महा - वीरो बाणानाशी-विषोपमान्।
अविध्यद् हृदये तस्याश्चण्डिकाया द्विजोत्तम ! ॥१८

ततो भगवती क्रुद्धा चक्रेणामित - तेजसा।
द्विधा चकार तान् सर्वान् बाणानाशी-विषोपमान् ॥१९

ततो घोरो महा-तेजा बाणान् दैत्यो महा-बली।
अवाकिरदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ॥२०

छन्ना जाता शरौघैः सा नीहारेण यथा रविः।
ततो हाहा-रवोऽप्यासीद् देवानां हि भयङ्करः ॥२१

ततस्तान् प्रति संक्रुद्धा युद्धाय मुनि-सत्तम !
दूरीकृत्य तु तान् सर्वान् वातेनेव यथा घनः ॥२२

राजते स्म तदा देवी मेघान्मुक्तो यथा रविः।
दुर्निरीक्षाऽभवच्चाम्बा वृष-राशौ यथा रविः ॥२३

ततो घोरो महा-वीरः सर्व- सैन्य - समन्वितः।
सिंह - नादं विनद्योच्चैर्धनुरानम्य सत्वरः ॥२४

प्रति-गृह्य ततो बाणान् तीक्ष्णांश्चाशी-विषोपमान्।
प्राहिणोत् तान् द्विज-श्रेष्ठ! दैत्य-राजो महा-बलः ।२५

बिभिदुस्ते ततो देव्याः शरीरं लक्षणान्वितम्।
बाणास्ते धरणीं प्राप्ताः स्वर्ण-पुङ्खाः शिली-मुखाः ॥२६

शोणितौघो महानासीद् दिव्य-देह-समुद्भवः।
ततो देवी रुषा - युक्ता काली देव - स्वरूपिणी ॥२७

नव-काय-समायुक्ता महा-काया महा-बला ।
विस्फार्य च धनुर्दिव्यं ननाद परमेश्वरी ॥२८

तेन नादेन महता कम्पितं भुवन-त्रयम् ।
बाण-वृष्टिं ववर्षाथ साऽम्बुमानिव पर्वते ॥२९

ते बाणास्तं समासाद्य घोराख्यं घोर-विक्रमम् ।
सहस्रशो व्रणान् चक्रू रक्तं येभ्योऽस्रवन्महत् ॥३०

विराजते स्म दैत्येन्द्रो धातु-मानिव पर्वतः ।
रुधिरात् तस्य सम्भूता घोरा दैत्याः सहस्रशः ॥३१

चिच्छेद सा शिरस्तेषां दैत्यानां मुनि-सत्तम !
तेषां क्षतज-बिन्दुभ्यो जाता नव्या महाऽसुराः ॥३२

कोटिशस्तु ततो भूता घोर-प्रख्या महा-बलाः ।
व्याप्तमासीत् ततो दैत्यैस्त्रैलोक्यं द्विज-सत्तम ॥३३

दृष्ट्वा क्रुद्धा भगवती देवी दिव्य-स्वरूपिणी ।
तदा सा चण्डिका देवी कोटि-रूप-धराऽभवत् ॥३४

एकैकं चापि दैत्येन्द्रं घोराख्यं भीम-विक्रमम् ।
गृहीत्वा चण्डिका भाति सहस्र-किरणोपमा ॥३५

न्यपातयद् दैत्य-वरं महोग्रम्,
समस्त-मायाऽसुर-बीज-भूतम् ।
स्तुतिं विदध्युस्त्रिदशाः प्रहृष्टाः,
गीतैश्च नृत्यैः परि-पूरितं नभः ॥३६

॥ इत्याद्ये चण्डी-पुराणे घोर-वधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

[अथ चिक्षुर-वधः]

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

श्रुत्वा च निहतं घोरं महिषः क्रोध - मूर्च्छितः ।
आदिदेश च दैत्येन्द्रं नमरं चिक्षुरं तथा ।।१

श्रुत्वा च घोरं निहतं महा-बलम्,
महेन्द्र - कल्पं च महोग्र - रूपम् ।
ततोऽभियातः सहसा महा - बलः,
ख्यातोऽपि दैत्यो नमरो महात्मा ।।२

दृष्ट्वा च तां भीम-महा-बलां शुभाम्,
सिंहाधिरूढां नव - चाप - संयुताम् ।
आयोधनस्थां खलु गर्जमानां,
चकार कोपं नमरो महा - बलः ।।३

कोपेनापि परिप्लुतो दैत्य-राजो महा - बलः ।
विस्फार्य च महच्चापं नमरो भीम - विक्रमः ।।४
ननाद सिंह - नादं वै कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
ववर्ष बाण - वर्षेण यथा तोय - धरो बली ।।५
हृदये तां जघानाथ चण्डीं चण्ड - पराक्रमाम् ।
ततः क्रोधाभि-भूतो सा बाणानादाय सत्वरा ।।६
विव्याध चण्डी दैत्येन्द्रं महा - बल - पराक्रमम् ।
बाण - घाताभिभूतस्तु वेपमानो मुहुर्मुहुः ।
कम्पते मुनि - शार्दूल ! वातेन कदली यथा ।।७
पुनर्धैर्यं समालम्ब्य दैत्य - राजो महा - बलः ।
स्वर्ण - पृष्ठं धनुर्दिव्यमक्षतं रिपु - सूदनम् ।।८
ईदृशं तत् समादाय नमरो दैत्य - सत्तमः ।
आकृष्य च धनुः श्रेष्ठं बाणानादाय सत्वरः ।।९
स्वर्ण-पुङ्खाँस् तैल-धौतान् बाणानाशी-विषोपमान् ।
विव्याध तां महा-भीम-चण्डिकां दैत्य-घातिनीम् ।।१०

ततः सा चण्डिका ब्रह्मन्! क्रोधात् संरक्त-लोचना ।
चकार तिलशः सर्वान् बाणानाशी-विषोपमान् ॥११

पञ्च-बाणान् पुनर्गृह्य दारुणान् वज्र-सन्निभान् ।
विव्याध नमरं वीरं हृदये दैत्य - सत्तमम् ॥१२

विध्य-मानस्तया हृदि मूर्च्छितो न्यपतद् भुवि ।
लब्ध-संज्ञस्तु दैत्येन्द्रो युद्धाय कृत - निश्चयः ॥१३

आकृष्य च धनुः-श्रेष्ठं सिंह-नादं चकार सः ।
तेन नादेन महता कम्पितं भुवन - त्रयम् ॥१४
दश बाणान् समादाय नमरो दैत्य-सत्तमः ।
विव्याध तां च वै देवीं ललाटे मुनि-पुङ्गव ! ॥१५

ततः क्रोधान्विता देवी चण्डिका भीम-विक्रमा ।
दश-पञ्च-शतान् बाणान् परिगृह्य महा-बला ॥१६
आचिक्षेप च तं वीरं बाह्वोर्मध्ये द्विजोत्तम !
ततो दैत्येश्वरः क्रुद्धो नमरो मुनि - सत्तम ! ॥१७
बहुशः परि-जग्राह बाणानाशी - विषोपमान् ।
तस्याः सिंहं च विव्याध विव्याध दशभिश्च ताम् ॥१८
सा चिच्छेद च तान् सर्वान् बाणान्नमर-प्रेषितान् ।
ततः क्रोध-वती देवी चक्रं जग्राह वै रुषा ॥१९

चिच्छेद च शिरस्तस्य नमरस्य द्विजोत्तम !
निहते नमरे दैत्ये चिक्षुरश्च महा-बलः ॥२०

हा-हेति नमरं कृत्वा चिक्षुरो बलवान् मुने !
सैन्यैर्बहुभिरभ्येत्य शोक - व्याकुल - लोचनः ॥२१

परि-गृह्य दृढं चापं स्वर्ण-पुङ्खं दुरासदम् ।
बहून् बाणान् समादाय नाराचान् रक्त-भोजनान् ॥२२
प्रेषयामास दैत्येन्द्रो देवीं देव-स्वरूपिणीम् ।
सा चैवं वै द्विज-श्रेष्ठ ! जवसोच्चैर्ननाद च ॥२३

शङ्ख-चक्र-धरा देवी खड्ग - मुद्गर - धारिणी ।
सिंह-पृष्ठ-स्थिता नित्या दैत्य-सैन्य-विनाशिनी ॥२४
द्विधा-कृत्य च तान् बाणान् नाराचान् रक्त-भोजनान् ।
चक्रेण शित - धारेण रथं सारथिना सह ।
जघान देवी सा नित्या चण्डिका भूत-धारिणी ॥२५

खड्गं जग्राह तीक्ष्णाग्रं द्वीपि-चर्म दृढं मुने !
अभ्यधावत् तथा क्रुद्धो हताश्वो हत-सारथिः ।।२६

खड्ग-हस्तं तमायान्तं दृष्ट्वा दैत्यं महा-बलम् ।
पुनर्जहास सा देवी चण्डिका भीम-विक्रमा ।
चकार तिलशः खड्गं चर्म चिच्छेद सा द्विधा ।।२७

छिन्नं खड्गं ततो दृष्ट्वा क्रोधात् संरक्त-लोचनः ।
जग्राह मुद्गरं भीमं चण्डिका - निधनोद्यतः ।।२८

मुद्गरं प्रेषितं तेन चिक्षुरेण महात्मना ।
दूरीचकार तं साऽपि मुद्गरं शत्रु - नाशनम् ।।२९

मुद्गरं वितथं दृष्ट्वा चिक्षुरो दैत्य-सत्तमः ।
शक्तिं जग्राह विप्रर्षे ! हन्तुं देवीमुपाययौ ।।३०

तमायान्तं तदा दृष्ट्वा चण्डिका चण्ड-विक्रमा ।
पश्यतामेव देवानां शिरः कायादपाहरत् ।।३१

पपात निहतो दैत्यश्छिन्न-मूलो यथा द्रुमः ।
चिक्षुरो निहतो ब्रह्मन् ! स - सैन्य-बल-वाहनः ।
देव्या दिव्य-स्वरूपिण्या दैत्य - सेनापतिर्द्विज ।।३२

।। इत्याद्ये श्रीचण्डी-पुराणे चिक्षुर-वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ।।

अष्टमोऽध्यायः

[अथ महिषासुर-वधः]

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

श्रुत्वा तु निहतं वीरं नमरं चिक्षुरं तथा ।
महिषोऽपि च दैत्येन्द्रो महत् - सैन्यैरुपागतः ।।१

कोटि-कोटि-सहस्रैस्तु दैत्य - सैन्यैः समन्ततः ।
अन्धकः प्रययौ ब्रह्मन् ! महिषस्य पुरोगमः ।।२

तारकश्च ययौ तत्र कोटि - कोटिभिरन्वितः ।
विडालास्या महा-वीरा महा-काया महा-बलाः ।।३

दशभिश्च सहस्रैश्च ययुस्तस्य पुरोगमाः,
काबन्धाश्च महत् - सैन्यैरयुतैः प्रयुतैर्मुने ।
ययुर्दैत्य - गणैः सार्धं महा - बल - पराक्रमा ।।४

काम्बोजाश्च शकाश्चैव चीनाश्चापि महा-बलाः ।
ययुर्दैत्य - भटाः सर्वे पत्तिभिश्च समन्विताः ।।५

यवनाः सौभकालेया महा-काया महा - बलाः ।
प्रययुश्च ततो दैत्याः सहस्रैः पत्तिभिर्वृताः ।।६

कालकेया महा-वीराः कोटि-कोटिभिरन्विताः ।
योद्धु-कामा द्विज - श्रेष्ठ ! ययुर्दैत्य-भटास्तथा ।।७

एते चान्ये च बहवो दैत्याः सर्वे समागताः ।
धूम्राक्षो धूम्र-केतुश्च धूम्र-माली महा-बलः ।।८

धुन्धुर्नामा महा - वीरस्तथा वै धूम्र - लोचनः ।
शुम्भश्चापि निशुम्भश्च चण्ड-मुण्डौ महा-बलौ ।।९

घोरस्य च सुतो वीरो रक्त-बीजो महा-बलः ।
महिषस्य सुतौ चापि ख्यातौ सुक्षेप - सुन्दकौ ।।१०

एतैश्चान्यैश्च बहुभिरावृतो महिषो बली ।
तां ददर्श महा - मायां सिंहारूढां महा - बलाम् ।।११

चक्रुर्दैत्य-भटाः सर्वे सिंह - नादं पृथक् - पृथक् ।
कम्पयन्तो धरां सर्वां स - शैल - वन - काननाम् ।।१२

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् ! चण्डिका भीम-विक्रमा,
ननाद देवी विप्रर्षे ! सिंह - नादं मही - तले ।
तेन नादेन महता कम्पितं भुवन - त्रयम् ॥१३

ततः क्रुद्धो महा - वीरो महिषो दैत्य - सत्तमः ।
रुरोध पर्वत-श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरि - वरोत्तमम् ॥१४

पर्वतादवतीर्याथ चण्डिका चण्ड - विक्रमा ।
योधयामास तैः सार्धं देवी दिव्य - पराक्रमा ॥१५

दैत्य - राजस्ततः क्रुद्धो महिषो भीम - विक्रमः ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैर्नाराचै रक्त - भोजनैः ॥१६

छन्ना जाता द्विज-श्रेष्ठ ! चण्डिका देव-रूपिणी ।
विधूनयति सा देवी बाणानाशी - विषोपमान् ॥१७

महिषोऽपि महा-वीर्यः सर्व - सैन्य - समन्वितः ।
परि-गृह्य धनुर्दिव्यं सुदृढं स्वर्ण - भूषणम् ॥१८

बाणानाशी-विष-कल्पान् कार्त्त-स्वर-विभूषितान् ।
आदाय च महा - वीरः सर्व-सैन्य-समन्वितः ॥१९

विस्फार्य सुदृढं चापं बाणानादाय सत्वरः ।
प्रैंखयत् सु-महा-वीर्यश्चण्डिकां काम-चारिणीम् ॥२०

बाण-विद्धा तु सा देवी महिषेण दुरात्मना ।
क्रुद्धा भगवती देवी चक्रमादाय सत्वरा ॥२१

तेन सार्द्धमभूद् युद्धं सर्व - देव - भयङ्करम् ।
चिक्षेप दैत्य-राजाय घोर - रूपं भयावहम् ॥२२

दैत्येन्द्रोऽपि महा-वीर्यश्चक्रमादाय वेग-वान् ।
प्राहिणोद् वै सु-चक्राय चक्रं छित्त्वा महा-मुने ! ॥२३

ततो भगवती ब्रह्मन् ! क्रोधात् संरक्त-लोचना ।
सिंह-नादं विनद्योच्चैर्बाणानादाय सत्वरा ॥२४

ताडयामास दैत्येन्द्रं हृदये मुनि - पुङ्गव !
विभिद्य हृदयं क्षिप्रं भुवं प्राप्ताः खराः शराः ॥२५

ततो दैत्येश्वरः क्रुद्धो महा-बल-पराक्रमः ।
घोरां शक्तिं प्रचिक्षेप देव-सैन्य-विनाशिनीम् ॥२६

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य चण्डिका भीम-विक्रमा।
द्विधा चकार चक्रेण सा पपात महीं-तले॥२७

निष्फलां पतितां दृष्ट्वा महिषः क्रोध-मूर्च्छितः।
परिगृह्य दृढं चापं स्वर्ण-पृष्ठं दुरासदम्॥२८

आकृष्य च ततो बाणान् हेम-पुङ्खान् शिली-मुखान्।
हृदयं विव्याध तस्याः प्रहसन् मुनि-पुङ्गव!॥२९

तदा क्रुद्धा महा-माया चण्डिका भीम-विक्रमा।
चक्रेणैव ततो दैत्याञ्जघान परमेश्वरी॥३०

दैत्य-देहोद्भवं रक्तं बहुशः परि-पूरितम्।
रुधिराच्च समुद्भूता नदी घोरा भयावहा॥३१

उष्णीषं फेन-वद् भाति द्वीप-वद् भाति वै गजः।
मत्स्य-वद् भाति खड्गो वै नक्र-वद् भाति तोमरः॥३२

ईदृशी सा नदी जाता राक्षसैरुप-शोभिता।
काक-श्येन-युता भीमा शिवा-शत-निनादिनी॥३३

वेताल-गण-संकीर्णा भीम-घोष-भय-प्रदा।
महिषस्तु महा-वीर्यस्तां दृष्ट्वा हृत-मानसः॥३४

उत्तीर्य सहसा वीरः सर्व-सैन्य-समन्वितः।
गर्ज-मानां तु तां दृष्ट्वा चण्डिकां रक्त-लोचनाम्॥३५

सिंहारूढां महा-मायां धाव-मानां समन्ततः।
ववर्ष बाण-धाराभिर्वृष्टि-मानिव चाम्बुदः॥३६

तदा क्रोध-वशा देवी नव-चाप-समन्विता,
कृत्वा किल-किला-शब्दं घोर-रूपा महा-भया।
अभ्यधावत दैत्येन्द्रं हन्तु-कामा दुरासदा॥३७

तामायान्तीं समालोक्य दैत्य-राजो महा-बलः।
कृत्वा किल-किला-शब्दमभ्यधावद् रुषान्वितः॥३८

खड्ग-चर्म-धरो दैत्यो महा-बल-पराक्रमः।
आजघान मृगेन्द्रं च ननाद पर-वीरहा॥३९

स खड्गो हृदयं प्राप्य मृगेन्द्रस्य महात्मनः,
निरसारयद् रक्त-धारां पर्वते गैरिकं यथा।
ततः क्रोधाभिभूता च बाणानादाय सत्वरा॥४०

प्रेषयामास दैत्येन्द्रं चण्डिका क्रोध-मूर्च्छिता।
बाणेन विद्धो दैत्येन्द्रो माहिषं रूपमास्थितः ॥४१

प्रति-गृह्य त्रिशूलं सा हृदये दैत्य-पुङ्गवः।
त्यक्त्वा च माहिषं रूपं गज-रूपं समास्थितः ॥४२

सुन्दो दैत्यैर्जघानाशु देव्याः सिंहं बलाधिकम्।
सा बबन्ध महा-दैत्यं पाशेनैव सु-तेजसा ॥४३

पाश-बद्धं समाज्ञाय दैत्येन्द्रः कायमात्मनः।
गज-रूपं परित्यज्य माहिषं रूपमास्थितः ॥४४

लांगूलेन हतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिच्छेद च ननाद च ॥४५

एतस्मिन्नन्तरे देवी पीत्वा पानं पुनः पुनः,
परि-गृह्य त्रिशूलं सा हृदयेऽभिजघान तम्।
अर्धं निष्क्रम-माणं तु माहिषाद् वपुषोऽसुरम् ॥४६

शूल-घाताभिभूतस्तु दैत्य-राजो महा-बलः,
खड्ग-चर्म-धरः सोऽपि योद्धु-कामो व्यवस्थितः।
हृदये स्तम्भितो दैत्यो न चचाल मही-तले ॥४७

ततः क्रोध-वती चण्डी खड्गमादाय सत्वरा।
महिषस्य शिरश्छित्वा पातयामास भू-तले ॥४८

तस्मिन् हते दैत्य-वरे महा-बले,
स्वस्थैव जाता धरणी द्विजोत्तम!
शेषाश्च दैत्याः स-बलाः स-वाहनाः,
पाताल-देशं विविशुर्भयार्ताः ॥४९

॥ इत्याद्ये श्रीचण्डी-पुराणे महिषासुर-वधो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥

नवमोऽध्यायः

[अथ सुन्दोपसुन्द-वधः]

।। श्रीमैत्रेय उवाच ।।

मार्कण्डेय, द्विज - श्रेष्ठ, वेद - वेदाङ्ग-पारग !
किमकुरुत सा देवी, महिषे विनिपातिते ।। १

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

महिषस्य सुतौ वीरौ, ख्यातौ सुन्दोपसुन्दकौ ।
तेपतुस्तौ तपश्चैव, वायु - भक्ष - रतौ मुने ! ।।२

शीर्ण - पत्राशिनौ दान्तौ, हराराधन - तत्परौ ।
एक-पाद-स्थितौ चोभौ, महा - बल-समन्वितौ ।।३

वर्षाणामयुतं ब्रह्मन् ! वायु - भोजन - तत्परौ ।
सन्तुष्टस्तपसा तेन, वृषारूढो महेश्वरः ।।४

तत्राजगाम देवेशो, यत्रोभौ तपसान्वितौ ।
'वरं वरय दैत्येन्द्रौ ! मनसो वाञ्छितं फलम्' ।।५

हरस्य वचनाद् ब्रह्मन्! त्यक्त्वा ध्यानं महा-बलौ ।
ऊचतुस्तौ महा-वीरौ, दैत्यौ सुन्दोपसुन्दकौ ।।६

'अजेयौ सर्व - देवैश्च, दानवैश्चापि शङ्कर !
यक्षैश्च चारणैश्चापि, गन्धर्वोरग - राक्षसैः ।।७

मानवैश्चापि देवेश ! भविष्यावो न संशयः,
त्वत् - प्रसादाच्च भूतेश ! सर्वमेतन्न संशयः ।'
एवमस्त्विति तौ प्रोच्य, जगाम त्रि-दिवं हरः ।।८

लब्ध्वा वरं हराद् दैत्यौ, महा - बल-समन्वितौ,
सैन्यान् सर्वान् समाहूय, विजये कृत - निश्चयौ ।
विजित्य त्रि-दशान् सर्वान्, राजत्वं चक्रतुर्मुदा ।।९

मर्त्य - भूतास्तदा देवाः, विचरन्ति मही-तले ।
सूर्यत्वं चक्रतुश्चैव, शशित्वं चापि वै मुने ! ।।१०

पावकत्वं यमत्वं च, पवनत्वं द्विजोत्तम !
इन्द्रत्वं च मरुत्त्वं च, ब्रह्मत्वं चक्रतुस्तदा ।।११

एवं पराजिता देवा, मर्त्य - भूता मही-तले ।
जग्मुश्च शरणं तस्य, देव - देवस्य चक्रिणः ।।१२

सूर्यः शशी यमश्चैव, पावकः पवनस्तथा ।
इन्द्रो ब्रह्मा द्विज-श्रेष्ठ ! दुःखिताः प्रययुस्तदा ।।१३

ददृशुर्देव - देवेशं, त्वादि - देवं जनार्दनम् ।
ब्रह्मादयः सुराः, सर्वे, हृत - राज्या हृतौजसः ।।१४

प्रणेमुस्तं द्विज - श्रेष्ठ ! देव - देवं सनातनम् ।
ऊचुः सुन्दार्दिता देवा, कम्पमानाः पुनः पुनः ।।१५

'सुन्दोपसुन्दकाभ्यां वै, हृत-राज्या वयं प्रभो !
किं कुर्मः, क्व च गच्छाम, कथं राज्याद्धि पातिताः' ।।१६

देवानां वचनं श्रुत्वा, भगवान् . जगदीश्वरः ।
आद्यां शक्तिं तदा स्तुत्वा, चिन्ता-व्याकुल-लोचनः ।१७

।। श्रीभगवानुवाच ।।

'माता त्वमेवासि पिता त्वमेव,
त्वमेव भ्राता च स्वसा त्वमेव ।
काष्ठा त्वमेवासि कला त्वमेव,
काल - स्वरूपाऽखिल - लोक - हेतुः ।।१८

अन्ने रसस्त्वं पुरुषेषु तेजः,
पुष्पेषु वासोऽपि गवां हि क्षीरम् ।
सूर्ये प्रभा त्वं शशिनोऽमृतं च,
हरेः श्रियं त्वां प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।।१९

नित्या त्वमेवासि तथाऽप्यनित्या,
नित्याऽसि लोके खलु मोहिनीति ।
जागर्ति-रूपाऽसि जगत् - त्रयेऽपि,
ख्याताऽसि मायेति समस्त-देहिनाम् ।।२०

विद्या त्वविद्याऽसि सदैव भाविनी,
भूतादि - भूताऽसि दिवा च रात्रिः ।
आद्यन्त-हीना ह्यविचिन्त्य - रूपा,
जलं स्थलं व्याप्य सदैव तिष्ठसि ।।२१

सगुणा निर्गुणा त्वं हि, सकला निष्कला तथा ।
उप - श्रुतिः श्रुतिश्चैव, स्वर्ग-मर्त्य-विभाविनी ।।२२

स्वधा स्वाहा परेशानी, काल-रात्रिश्च कालिका ।
परा वरा स्तम्भिनी च, योग-निद्रा सनातनी ।।२३
दुर्गा शाकम्भरी गौरी, पार्वती परमेश्वरी ।
सावित्री मङ्गला भद्रा, गायत्री च महा - बला ।।२४
माहेश्वरी च चामुण्डा, कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डैन्द्री च वाराही, ब्रह्माणी नारसिंहिनी ।।२५

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं स्तुता तेन जनार्दनेन,
प्रोवाच वाक्यं परमेश्वरी सा ।
'हितं करिष्याम्यहं जनार्दन !
दिवौकसां चापि सदा मुनीनाम्' ।।२६
स्वमाश्रमं गता - देवा, देव - देवेश - प्रेषिताः ।
भगवानपि विश्वात्मा, महान् रेमे जगत्-पतिः ।।२७
ततः सा चण्डिका ब्रह्मन् ! मोहिनी-रूपमास्थिता,
आजगाम गिरि-श्रेष्ठं, विन्ध्य - पादं मनोहरम् ।
दिव्य - रूपा महा - माया ह्यतीव - सुमनोहरा ।।२८
एतस्मिन्नन्तरे चैव, समायातौ महा - बलौ ।
दैत्येश्वरौ महा - वीरौ, ख्यातौ सुन्दोपसुन्दकौ ।।२६
दृष्ट्वा तां तौ शुभां देवीं, मोहिनीं लोक-मोहनीम् ।
खड्गमादाय तौ वीरौ, 'ममेयं वर - वर्णिनी' ।।३०
'अहमेनां परिणेताऽस्मि, मम भार्या भविष्यति ।'
इति ब्रुवन्तौ तौ दैत्यौ, मोहिनीमभ्यधावताम् ।।३१
मोहिनी मोहयामास, निज - रूपेण भामिनी ।
मृदु - हास्य - वचो - भङ्गैरसुरावति - दारुणौ ।।३२
सुन्दः खड्गेन तं वीरमुपसुन्दस्तु सुन्दकम् ।
अन्योऽन्यं जघ्नतुर्वीरौ, मोहिन्यामभिलाषुकौ ।।३३
एवं दैत्य-वरौ नष्टौ, मोहिन्या द्विज - सत्तम !
विनाऽपि युद्धं दैत्येन्द्रैः, रक्त-पात-विवर्जितम् ।।३४
एवं सा चण्डिका नित्या, विष्णु-मायेति संज्ञिता ।
प्रभव - स्थिति - संहारं, लोकस्य कुरुते सदा ।।३५
शक्ति - स्वरूपा सा ज्ञेया, पर-शम्भु-समाश्रिता ।
सैवाविद्या तु विद्या च, बन्ध-मोक्ष-स्वरूपिणी ।।३६

।। इत्याद्ये श्रीचण्डी-पुराणे सुन्दोपसुन्द-वधो नाम नवमोऽध्यायः ।।

अथ दशमोऽध्यायः

(अथ मुरादि-दैत्य-निबर्हणम्)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कोऽसौ मुर इति ख्यातो, देवो यक्षोऽथ वाऽसुरः ?
कथं विष्णोः समाख्याऽभून्, मुरारिरिति कथ्यताम् ॥१

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

मुर-नामा बभूवैको, दानवोऽसुर-राट् बली ।
योऽसौ रजः-सत्त्व-मयो, गुणवांश्च तपो-मयः ॥२

निर्गुणः सर्वगो व्यापी, मुरारिर्मधु - सूदनः ।
देवी-सहायस्तं विष्णुः, पुरा निहत - वान् प्रभुः ॥३

॥ मैत्रेय उवाच ॥

योऽसौ मुर इति ख्यातः, कस्य पुत्रः स गीयते ?
कथं च निहतः संख्ये, विष्णुना तद् वदस्व मे ॥४

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

श्रूयतां कथयिष्यामि, मुरासुर - निबर्हणम् ।
विचित्रमिदमाख्यानं, पुण्यदं पाप-नाशनम् ॥५

कश्यपस्यौरसः पुत्रो, मुरो नाम स दानवः ।
मृत्योर्भयमपाकर्तुं, तपस्तेपे सु - दारुणम् ॥६

आराधयामास विभुं, ब्रह्माणमपराजितम् ।
ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह 'वत्स ! वरं वृणु' ॥७

स च वव्रे वरं दैत्यो, लोक-नाथाद् भयङ्करम् ।
'यं यं स्पृशेयं हस्तेन, मृतो जायेत सोऽचिरात् ।'
'बाढ'मित्येव भगवानूचे लोक - पितामहः ॥८

ततोऽभ्यागान् महा-तेजा, मुरः सुर-गिरिं बली ।
समेत्य ह्वयते देवं, यक्षं किन्नरमेव च ॥९

न कश्चिद् युध्यते तेन, समं दैत्येन भो द्विज !
ततोऽमरावतीं दर्पात्, स गत्वा शक्रमाह्वयत् ।
प्रविशन्तं न तं कश्चिन्, निवारयितुमुत्सहेत् ॥१०

स गत्वा शक्र-सदनं, प्रोवाचेदं मुरस्तदा।
'देहि युद्धं सहस्राक्ष ! नो चेत् स्वर्गं परित्यज' ॥११
इत्येवमुक्तो दैत्येन, ब्रह्मन् ! हरि - हयस्तदा,
'नानेन सह योद्धव्यं', मतिं चक्रे पुरन्दरः।
स्वर्ग - राज्यं परित्यज्य, भूचरः समजायत ॥१२
ततो गजेन्द्र-कुलिशौ, नीतौ शक्रस्य शत्रुणा।
सकलत्रो महा - तेजाः, सह देवैः पुरन्दरः ॥१३
कालिन्द्या दक्षिणे कूले निवेश्य स पुरे स्थितः।
मुरस्त्वपि महा-भोगान्, बुभुजे स्वर्ग-संस्थितः ॥१४
दानवस्त्वपरे रौद्रा, मय-तार - पुरोगमा।
पुरमासाद्य मोदन्ते, स्वर्गे सु-कृतिनो यथा ॥१५
स कदाचिन्मही-पृष्ठं, समायातो महाऽसुरः।
एकाकी कुञ्जरारूढः, सरयूं निम्नगां प्रति ॥१६
स सरय्वास्तटे वीरं, राजानं सूर्य - वंशजम्।
ददर्श रघु - नामानं, दीक्षितं यज्ञ - कर्मणि ॥१७
तमागम्याब्रवीद् दैत्यो, 'युद्धं मे दीयता'मिति।
'नो चेन्निवर्त्ततां यज्ञो, न याज्या देवतास्त्वया' ॥१८
तमुवाच महा - तेजा, मित्रावरुण - सम्भवः।
महर्षिर्बुद्धिमान् ब्रह्मन् ! वसिष्ठस्तपसां वरः ॥१९
'किं तर्जितैर्नरैर्दैत्यान्, दुर्वृत्ताननुशासय।
न हन्तुमिच्छसि यदि तान्, निगृहाण त्वमन्तकम् ॥२०
स बली शासनं ते नो, स्वीकरोति समन्ततः।
तस्मिन् जिते हि विजितं, सर्वं मन्यस्व भूतले' ॥२१
तद् वसिष्ठस्य वचनं, निशम्य दनु - पुङ्गवः।
जगाम धर्म - राजानं, विजेतुं दण्ड - पाणिनम् ॥२२
तमायान्तं यमः श्रुत्वा, गत्वा योज्य च संयुगम्।
समारुह्याथ महिषं केशवान्तिकमागतः ॥२३
स तं चैवाभि-वन्द्यैनं, प्रोवाच मुर-चेष्टितम्।
तमाह 'गच्छ, मत् पार्श्वे, प्रेषयस्व महाऽसुरम्' ॥२४
स वै देवस्य वचनं, श्रुत्वाऽभ्यागात् त्वरान्वितः।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः, सम्प्राप्तो नगरीं मुरः ॥२५

तमागतं यमः प्राह 'किं मुर ! कर्त्तुमिच्छसि' ?
वदस्व मनसाऽभीष्टं त्वदीयं दानवेश्वर !' ।।२६

।। मुररुवाच ।।

'यम ! प्रजा-संयमनं, न त्वं कर्तुमिहार्हसि ।
नो चेत् तवाद्य वै छित्वा, मूर्धानं पातये भुवि' ।।२७

तमाह धर्मराड् वाक्यं, 'कथं मां संयमेद् भवान् ।
नियोजितोऽहं केनापि, स्वेच्छया न करोमि तत्' ।।२८

मुरस्तमाह 'भवतः, कः संयन्ता वदस्व माम् ।
अहमेनं परित्यज्य, निर्वर्तिष्ये न संशयः' ।।२९

यमस्तं प्राह, 'मां विष्णुर्देवश्चक्र - गदा - धरः ।
श्वेत-द्वीपे निवासी यः, स मां संयमतेऽव्ययः' ।।३०

तमाह मुनि-शार्दूल ! 'क्वासौ वसति दुर्जयः ?
स्वयं तत्र गमिष्यामि, तस्यावासं वदस्व माम्' ।।३१

तमुवाच यमो, 'गच्छ, क्षीरोदं नाम सागरम् ।
यत्रास्ते भगवान् विष्णुर्देव-नाथस्तपो-मयः' ।।३२

मुरस्तद् वाक्यमाकर्ण्य प्राह 'गच्छामि केशवम् ।
किन्तु त्वया न तावद्धि, संयम्याः पापिनो जनाः' ।३३

स प्राह, 'गच्छ त्वं तावत्, प्रवर्तस्व जयं प्रति ।
सम्पन्न-वाग् यथा स्यास्त्वं, वेदितव्यो जनोऽप्ययम्' ।।३४

'ओमि'त्युक्त्वा तु वचनं, दुग्धाब्धिमगमन् मुरः ।
यत्रास्ते शेष - पर्यङ्के, चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः ।।३५

'युद्धं मे देहि लक्ष्मीश ! कण्डूयेते भुजौ मम ।
सदृशं नैव पश्यामि, योत्स्ये येन समं युधि' ।।३६

श्रुत्वैतद् दम्भ-संदृब्धं, वचनं दैत्यस्य केशवः !
उवाच, 'नैव ते मृत्योः कालः सम्प्रति वर्तते ।।३७

द्वापरे तु युगे प्राप्ते, कृष्ण - रूपेण दैत्य-राट् !
दुष्कृतां सन्निपाताय, सम्भविष्याम्यहं भुवि ।।३८

प्राग्ज्योतिष-पुराधीशं, भौमाख्यं तु महाऽसुरम्,
तदाऽहं निहनिष्यामि, बहु - कन्याऽपहारिणम् ।
गो - विप्र - धेनु - द्वेष्टारमृषीणामार्त्तिदं खलम् ।।३९

सत्वरं याहि भू-लोकं, कुर्वन् राज्यमकण्टकम् ।
कालमेव प्रतीक्षस्व, संग्राम - रस - सिद्धये ॥४०
यस्मिन् देशे तु यत्-काले, मृत्युर्वै प्राणिनां स्थिरः ।
तस्मिन्नेव तमाप्नोति, मानवो दानवः पशुः' ॥४१

बहु - कालं व्यतीत्याथ, दानवो मुनि - पुङ्गव !
भौमासुरस्य सेवायां, सैनापत्यं चकार ह ॥४२
प्राग्ज्योतिष-पुरं रम्यं, ररक्ष परितो बली,
दशभिः पुत्रकैः सार्द्धं, साकं पञ्च - जनेन च ।
शुम्भान्धकौ तथा वीरौ, साहाय्यं तस्य चक्रतुः ॥४३
देवी भगवती विष्णोः, महा - माया सनातनी ।
नन्द-गोप-गृहे जाता, कृष्णस्य भगिनी शुभा ॥४४
भगवच्छक्ति-स्वरूपा, सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा ।
एकानंशेति विख्याता, भुवन - त्रय - मोहिनी ॥४५

तया युक्तोऽवतीर्णोऽथ, द्वापरे पालकः प्रभुः ।
देवी-सहायो भूतात्मा, सर्व - लोक - नमस्कृतः ॥४६
कृष्णावतारे देवेन, विष्णुना सोऽति-गर्व-वान् ।
अनायासं हतः पुत्रैः, साकं युद्धे सु-दारुणे ॥४७

हय-ग्रीवोऽन्धकश्चैव, मुरः पञ्च - जनस्तथा,
शुम्भश्चैव महा - वीर्यश्चतुरङ्ग - बलान्वितः ।
एते चान्ये च दैत्या, हता कृष्णेन चाहवे ॥४८

तदा प्रभृति दैत्यारिः, मुरारिति विश्रुतः ।
ख्यातिं जगाम देवेशो, मुरं हत्वा परां प्रभुः ॥४९
एवं भगवती नित्या, विष्णोः शक्ति-स्वरूपिणी ।
स्वयं, विष्णु-सहाया वा, दैत्यान् संहरते द्विज ! ॥५०

सैवाऽस्ति हेतुः परमः प्रधानः,
बन्धस्य मोक्षस्य च सर्व-जन्तोः ।
भक्त्या समाराध्य परेश्वरीं ताम्,
भुक्तिं च मुक्तिं च जना लभन्ते ॥५१

॥ इत्याद्ये चण्डी-पुराणे मुरादि-दैत्य-निबर्हणं नाम दशमोध्यायः ॥

●●●

एकादशोऽध्यायः

[अथ तीर्थ-माहात्म्यम्]

।। मैत्रेय उवाच ।।

सूर्यः कुतः समुत्पन्नः ? कुतश्चापि शशी मुने ?
पावकश्च कुतो जातः ? कस्माच्चापि जलं मुने ?
एतन्मे संशयं सर्वं, कथयस्व यथा - तथम् ।।१

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

हरिर्नारायणो देवस्त्वादि - देवो जनार्दनः,
तस्यापि चक्षुषो ब्रह्मन् ! दक्षिणाच्चांशुमानभूत् ।
वामतस्तु शशी जातस्तेजसोऽग्निरभूद् द्विज ! ।।२

तस्यापि च हरेर्लाला, जलं लोके प्रतिष्ठितम्,
श्वसनं चानिलं विद्धि, हरेर्द्विज - वरोत्तम !
एतत् ते कथितं ब्रह्मन्! यत् पृष्टोऽस्मि त्वयानघ !।३

।। मैत्रेय उवाच ।।

तीर्थानां चापि माहात्म्यं, कथयस्व महा - मुने !
एतद् वै चरितं श्रुत्वा, मुच्यते सर्व - पातकैः ।।४

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

गङ्गां स्नात्वा नरः कश्चित्, सर्व-धर्म-विवर्जितः ।
पुण्यवान् स नरो जातो, मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ।।५

गङ्गा गङ्गेति यो नित्यं, ब्रूयादज्ञानतो मुने !
सप्त-जन्म-कृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।६

गङ्गायां च सदा स्नानं, दानं दद्याद् विचक्षणः ।
देवतानां पितृणां च, तर्पणं कुरुते नरः ।।७

गङ्गायां च द्विज-श्रेष्ठ ! कृत्वा श्राद्धं विधानतः ।
दद्याद् धनं यथा-शक्ति, ब्राह्मणाय समाहितः ।।८

असो - वरुणयोर्मध्ये, क्षेत्रं वाराणसी मुने !
त्यजेद् देहं तु यः कश्चित्, साक्षान्नारायणो भवेत् ।।९

प्रयागे वपनं कार्यं, तीर्थ - राजे च कामदे ।
तत्र देह-परित्यागाल्लभते वाञ्छितं फलम् ।।१०
नैमिषे निमिषा - क्षेत्रे, तत्र स्नानं विधीयते ।
कोटि-जन्म - कृतं पापं, मज्जनादेव नश्यति ।।११
चक्र-तीर्थे द्विज - श्रेष्ठ ! दानं दद्याद् विचक्षणः ।
स्नानं कृत्वा यथा-न्यायं, मुच्यते सर्व-पातकैः ।।१२
कुरु-क्षेत्रे द्विज - श्रेष्ठ ! दानं दद्याद् विचक्षणः ।
स्नानं कृत्वा यथा-न्यायं, भोजयेद् ब्राह्मणान् बहून् ।।१३
पुष्करे च सदा स्नानं, गां च दद्याद् द्विजातये ।
सप्त - जन्म - कृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।१४
पृथूदके नरो नित्यं, स्नात्वा चैव विचक्षणः ।
ब्रह्म - हत्यादिकं पापं, दर्शनादेव नश्यति ।।१५
कपाल - मोचने चैव, स्नात्वा नर - वरो भुवि !
सर्व-पाप - विनिर्मुक्तो, दिव्य-लोकं स गच्छति ।।१६
प्रभासे च सदा स्नानं, कृत्वा मुनि-वरोत्तम !
सप्त - जन्म - कृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।।१७
हरि - द्वारादि - तीर्थानि, विदर्भादीनि वै मुने !
आश्रमादीनि पुण्यानि, क्षेत्राण्यायतनानि च ।।१८
द्रष्टव्यानि च सर्वाणि, स्प्रष्टव्यानि समाहितम् ।
सर्व - पापानि नश्यन्ति, दर्शनात् स्पर्शनान्मुने ! ।।१९
सेवितव्यानि तीर्थानि, भुक्ति-मुक्ति-प्रदानि च ।
सर्वाभिलाष - दायीनि, सत्यमेतद् वदाम्यहम् ।।२०

।। इत्याद्ये चण्डी-पुराणे तीर्थ-माहात्म्यं नाम एकादशोऽध्यायः ।।

समाप्तं चेदं श्रीचण्डी-पुराणम्

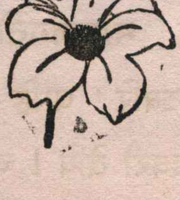

देवि, प्रपन्नार्ति-हरे ! प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य
प्रसीद विश्वेश्वरि ! पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि ! चराचरस्य

हिन्दी

श्रीचण्डी-पुराण

पहला अध्याय

[नारद को शाप]

मुनियों में श्रेष्ठ कौशारव ने तपोनिधि मुनि-श्रेष्ठ मार्कण्डेय से, जिन्होंने तप द्वारा पाप को नष्ट कर डाला था, पूछा—

'हे श्रेष्ठ मुनि ! चण्डिका नामक पुराण कैसा है ? वह महा-पापों का नाश करनेवाला है, उस सबको मैं सुनना चाहता हूँ ।। १-२

'चण्डी कौन हैं ? वह शङ्कर कौन हैं ? प्राचीन काल में ब्रह्मा कैसे हुये ? हे ब्रह्मन् ! कल्याणी सती दक्ष की पुत्री कैसे हुईं ? ।।३

'दक्ष नाम से कौन प्रसिद्ध है ? कौन सूर्य है, कौन शुभ शशि है ? अग्नि कैसे उत्पन्न हुआ है ? जल क्या है ? अथवा वायु कौन है ? इस मेरे सन्देह को, हे ब्रह्मन् ! ठीक-ठीक दूर करिये ।।४

'और तीर्थों की तथा मन्त्रों की भी महिमा, हे विप्रर्षे ! मेरे आगे कहिये' ।।५

मार्कण्डेय बोले—हे मुनि-श्रेष्ठ ! चण्डिका नामक पुराण को सुनिए, जिसे सुनकर सब पापों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।६

हे द्विज-श्रेष्ठ ! धर्म से युक्त पुराण को कहता हूँ, जो सब सन्देहों का दूर करनेवाला चण्डिका का आश्रय पुराण है ।।७

शेषनाग पर लेटे हुए विश्वात्मा भगवान् विष्णुदेव विश्व को जल-मय और स्थावर-जङ्गम को नष्ट हुआ देखकर—

और सभी लोकों का नाश देखकर चिन्ता से व्याकुल-इन्द्रिय होकर 'मैं अकेला हूँ' इस चिन्ता से युक्त रहते हुए प्रलय - सागर में स्थित थे ।।८-९

वहाँ हे महा-मुनि ! चिन्ता-रूपी चण्डिका ही दूसरी थीं। वह पुरातनी और सदा रहनेवाली जानी जाती हैं। उन्हीं से बुद्धिमान् चण्डी को जान पाते हैं ॥१०

ॐकार-रूपवाली वह सदा रहनेवाली हैं और तीनों लोकों का विनाश करनेवाली हैं। चिन्ता-रूप को छोड़कर चण्डिका चण्डी मानी जाती हैं। वही आद्या-शक्ति नाम से प्रसिद्ध होकर लोकों की भावना करनेवाली इच्छा देवी हैं ॥११

देव-देव जनार्दन भी इच्छा से युक्त होते हैं कि 'मैं प्रजा की सृष्टि करूँगा, जिससे मैं एक होता हुआ भी बहुत हो जाऊँ' ॥१२

लोकों की रचना करनेवाले, जगत् के स्वामी विष्णु, जो स्वयं रक्षक हैं, पूर्व-काल में विश्व की भावना करते हुये उन्होंने एक स्वर्ण-मय अण्ड की रचना की ॥१३

उसके मध्य में उन्होंने प्राणियों की रचना करनेवाले ब्रह्मा की स्थापना की। उनके क्रोध से लोकों का नाश करनेवाले रुद्र उत्पन्न हुए ॥१४

प्राणियों की रचना करनेवाले उन ब्रह्मा को पद्मासन पर बैठे हुए देखकर हे मुनि ! क्रोध से भरे हुए रुद्र ने यह बात कही—

'आप यहाँ कौन आए हैं, ठीक-ठीक कहिए।'

रुद्र की बात को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्मा ने भी यह बात कही कि 'आप कौन यहाँ आए हैं ?' ॥१५-१६

हर ने यह बात कही कि 'मैं यहाँ पहले से था।' ब्रह्मा ने कहा कि 'नहीं, मेरे द्वारा तुम 'अर्भक' (क्षुद्र या मूर्ख) उत्पन्न हुए हो' ॥१७

'मैं इस लोक में पहले आया, मैं इस लोक में पहले आया', इस प्रकार कहते हुए उन दोनों में सब लोकों को भय देनेवाला भयङ्कर युद्ध छिड़ गया ॥१८

क्रोध से भरकर रुद्र ने, हे द्विज-श्रेष्ठ ! उन्हें (ब्रह्मा को) शूल से नाभि में, उदर में और वक्ष-स्थल में मारा ॥१९

शूल की चोट से, हे महा-मुने ! तीन धारायें निकलीं। एक पाताल को जानेवाली धारा सबके मुख में रहनेवाली हुई ॥२०

दूसरी आकाश में स्थित हुई। हे मुनि-श्रेष्ठ ! वह शुभा—कल्याणकारिणी है। तीसरी जो निकली, वह रुद्र के हाथ में स्थित हुई ॥२१

और रुद्र के हाथ में गई हुई वह धारा, हे मुने ! ब्रह्म-हत्या कहलाई। कपाल-रूप धारण कर वह शङ्कर के हाथ में स्थित हुई ॥२२

हे द्विज-श्रेष्ठ ! वह रक्त, मज्जा, वसा, मांस को छोड़ती रहती है। तब से वे रुद्र कपालित्व को प्राप्त हुए ॥२३

मैत्रेय बोले—हे मुनि-श्रेष्ठ ! किस प्रकार दक्ष उत्पन्न होकर भी प्रजापति हुए ? जैसा तथ्य हो, कहिए। मुझे बहुत बड़ा सन्देह है ॥२४

मार्कण्डेय ने कहा— स्वायम्भुव नामक नृप-श्रेष्ठ मनु हुये। उनके पुत्र उत्तानपाद और उनके पुत्र महान् ध्रुव हुये ॥२५

ध्रुव से धर और धर से प्राचीन-बर्हि राजा हुए। प्राचीन-बर्हि के दश बुद्धिमान् पुत्र हुये ॥२६

हे ब्रह्मन् ! वेदज्ञ और समान रूप से कर्मठ वे सब समुद्र के पवित्र जल में तपस्या करने के लिये गये ॥२७

जल से तेज-युक्त वे तपस्वी निकले और सारी पृथ्वी को वृक्षादि से परिपूर्ण देखा ॥२८

मुखों से पवन को छोड़कर, आँख से अग्नि की रचना करते हुये वे महा-बली सभी वृक्षों को भस्म करने लगे ॥२९

जलते हुये उन वृक्षों ने, हे द्विजोत्तम ! एक सुन्दरी कन्या को लाकर उनसे कहा कि 'मारिषा' नाम से प्रसिद्ध इस सुन्दरी को पत्नी-रूप में ग्रहण करिये ॥३०

हे ब्रह्मन् ! वृक्षों के कहने से उसे राज-कुमारों ने ग्रहण किया और उससे 'दक्ष' को उत्पन्न किया, जो आदि प्रजा-पति हुये ॥३१

दश-तेजों से उत्पन्न दक्ष परम धार्मिक थे। उन दक्ष ने बहुत से मानस पुत्रों को उत्पन्न किया ॥३२

नारद के द्वारा ठगे जाकर वे सब दस दिशाओं में चले गए। तब सृष्टि करने की इचछावाले धर्मात्मा शत्रुञ्जयी दक्ष ने दस हजार

मानस पुत्रों को पुनः उत्पन्न किया। पृथ्वी को एकान्त करने के लिये नारद फिर आये ॥३३-३४

नारद के द्वारा यह कहने पर कि 'तुम लोग क्या कर रहे हो ?' उन्होंने उन मुनि से कहा कि 'प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे' ॥३५

मुनि-श्रेष्ठ नारद ने हँसकर यह बात कही कि 'प्रजा के लिये तुम्हारे भाई दश दिशाओं में गये हैं' ॥३६

नारद की बात सुनकर वे भाइयों की खोज में चले गये और समुद्र में गिरे के समान नहीं लौटे ॥३७

दक्ष के वे महा-बली पुत्र भी नारद के द्वारा नष्ट हो गये। तब उन्हें नष्ट हुआ सुनकर प्राचेतस दक्ष ने, हे मुने !—

क्रोधित होकर नारद को शाप दिया कि इस लोक में सदा घूमते हुये तुम्हारी स्थिति कलह के बिना न होगी ॥३८-३९

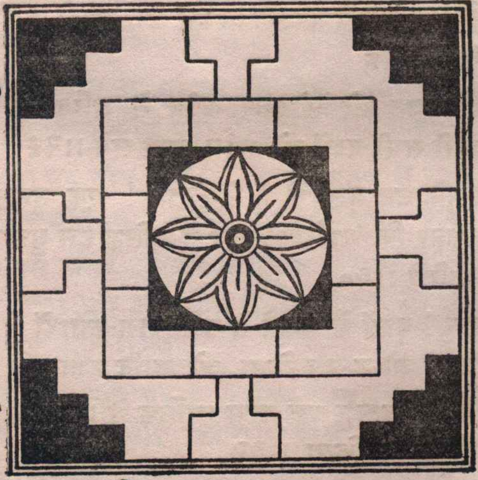

दूसरा अध्याय

[सती का देह-त्याग]

मार्कण्डेय बोले—तब पुत्रों को नष्ट हुआ देखकर इस चिन्ता से कि 'प्रजाओं की सृष्टि कैसे करूँ ?' परम धार्मिक दक्ष व्याकुल हो उठे ।। १

दीन-दुखियों को शरण देनेवाले प्रभु—आदि-देव, सनातन नारायण देव का ध्यान कर वे निम्न स्तुति से उन्हें प्रसन्न करने लगे—।।२

'नमो भगवते तुभ्यं ज्ञान-मुद्राय वेधसे ।
लोक-नाथाय नाथाय देव-देवाय धारिणे ।
नारायणायानन्ताय पद्म-नाभाय कारिणे ।।

भूतेशाय च भूताय ज्ञान-विज्ञान-साक्षिणे ।
अरूपानेक-रूपाय निर्गुणाय गुणाय च' ।।

'हे भगवन् ! आपको नमस्कार है । आप ज्ञान-स्वरूप हैं, आप ही स्रष्टा हैं । लोकों के आप स्वामी हैं, देवों के भी देव हैं और सबको धारण करनेवाले हैं । आप अनन्त नारायण को नमस्कार है । आप कमल-नाभि हैं, आप ही सब कुछ करनेवाले हैं । सभी प्राणियों के आप स्वामी हैं, समस्त तत्त्व-स्वरूप हैं और ज्ञान-विज्ञान के साक्षी हैं । आप निराकार हैं, साथ ही बहुत से आकारवाले भी हैं; गुण-हीन हैं तथा गुणों से युक्त भी हैं । आपको नमस्कार है' ।।३-४

अतुल तेजवाले उन दक्ष द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर सभी प्राणियों की भावना करनेवाले भगवान् ने कहा कि 'हे प्रजा-पते ! आज घर जाओ । मैं तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण करूँगा' ।।५

विश्व के आत्म-स्वरूप, देवों के देव भगवान् जनार्दन ने भी लोकों की जननी परमा देवी चण्डिका को निम्न स्तुति द्वारा स्मरण किया—।।६

'नमो देव्यै च नाथायै कल्याण्यै ते नमो नमः ।
नमो जगत्-प्रतिष्ठायै मात्रे तुभ्यं नमो नमः ।।
नमो लक्ष्म्यै च धात्र्यै च शर्वाण्यै ते नमो नमः ।
नमो देव्यै च सिद्ध्यै च ऋद्ध्यै देव्यै नमो नमः ।।
उप-श्रुत्यै च दिव्यै च मुक्तिदायै नमो नमः ।
भुक्तिदायै नमस्तेऽस्तु चायुर्दायै नमो नमः ।
सरस्वत्यै नमस्तुभ्यं नमस्ते जगदम्बिके ! ।।
माता त्वमेवाथ स्वसा त्वमेव,
भार्या त्वमेवं हि सुता त्वमेव ।
त्वमेव नाथा च हिता प्रभाविणी,
त्वमेव नारी पुरुषस्त्वमेव' ।।

'देवी को नमस्कार। आप स्वामिनी हैं, कल्याणी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार। जगत् की प्रतिष्ठा को नमस्कार। आप माता हैं, आपको बारम्बार नमस्कार ।।७

'लक्ष्मी को नमस्कार। आप धात्री और शर्वाणी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार। देवी को नमस्कार। आप सिद्धि हैं, आप ऋद्धि हैं, आपको बारम्बार नमस्कार ।।८

'आप उप-श्रुति हैं, दिव्या हैं और मुक्तिदा हैं, आपको बारम्बार नमस्कार। भुक्तिदा को नमस्कार। आप आयु-दायिनी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार। सरस्वती को नमस्कार। आप जगदम्बिका हैं, आपको नमस्कार ।।९

'आप ही माता हैं और आप ही बहन हैं। पत्नी आप ही हैं और आप ही पुत्री हैं। आप ही स्वामिनी हैं और प्रभाववाली हित-कारिणी हैं। आप ही स्त्री हैं और पुरुष भी आप ही हैं' ।।१०

इस प्रकार उन जनार्दन द्वारा स्तुति किये जाने पर देवी स्वभाव-वश बोलीं—'हे जनार्दन ! मैं प्रजापति की पुत्री बनूँगी और सती नाम से प्रसिद्ध होऊँगी' ।।११

हे द्विज-श्रेष्ठ ! बाएँ अँगूठे से वे देवी दक्ष की सुन्दर रूपवाली युवा पत्नी शत-रूपा बनीं ।।१२

उनसे दक्ष ने सुन्दर साठ कन्याओं को उत्पन्न किया । उनमें जो ज्येष्ठा कन्या थी, वह 'सती' कहलाई ।।१३

उस रूप-सम्पन्ना कन्या को दक्ष ने शङ्कर को प्रदान किया । उन्होंने दस कन्याएँ धर्म-देव को और तेरह कन्यायें कश्यप को प्रदान कीं ।।१४

सत्ताइस कन्याएँ चन्द्र-देव को, दो अरिष्टनेमि को और हे द्विज-श्रेष्ठ ! पाँच कन्याएँ दक्ष ने अत्रि को प्रदान कीं ।।१५

हे मुनि-श्रेष्ठ ! फिर उन्होंने दो कन्याएँ हरि को प्रदान कीं । इस प्रकार धर्मात्मा दक्ष प्रजापति ने कन्याओं का वितरण किया ।।१६

हे ऋषि विप्र ! तब सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर दक्ष ने पत्नी-सहित शङ्कर को छोड़कर सभी पुत्रियों और जामाताओं को आमन्त्रित कर यज्ञ किया । हे मुनि-श्रेष्ठ ! उस समय चारों ओर यही सुनाई पड़ने लगा कि 'दीजिये, दीजिए' और 'खाइए, खाइए' । उस यज्ञ में, हे द्विज-श्रेष्ठ ! पिता के वचन सुनकर सती ने पति से कहा—।।१७-१८

सती बोलीं—'हे देवेश ! मैं पिता के घर जाऊँगी, आप आज्ञा दीजिये । मैं यज्ञ देखूँगी और बहनों को देखूँगी' ।।१९

शङ्कर ने कहा—'हे भद्रे ! ऐसी इच्छा करो, जिससे तुम्हारा अहित न हो' ।।२०

तेजस्वी शङ्कर द्वारा इस प्रकार मना किये जाने पर भी देवी ने प्रणाम कर पुनः अपनी बात कही ।।२१

सती बोलीं—'मैं पिता के घर जाऊँगी, चाहे अच्छा हो या बुरा । गङ्गा सभी तीर्थों से युक्त हैं और हरि सभी देवों से । जैसे तीर्थों में गङ्गा सारे लोकों की माता हैं और देवों में जैसे विष्णु हैं, उसी प्रकार संसार में पिता ही प्रभु हैं । जैसा होना है, होगा । आप मुझे आज्ञा दें' ।।२२-२३

फिर उन भगवान् शम्भु की आज्ञा से गणों के साथ वे पिता के घर आईं ।।२४

देवों और दानवों से युक्त यज्ञ-प्राङ्गण को उन देवी सती ने देखा और अत्यन्त दुखी होकर सोचने लगीं—।।२५

'सभी देवता तथा बहनें और दामाद आमन्त्रित किये गए हैं, केवल समस्त देवताओं से वन्दित शङ्कर ही नहीं बुलाए गये हैं' ।।२६

यज्ञ-गृह में प्रवेश कर और अग्नि को देखकर, हे ब्रह्मन् ! कोपाविष्ट होकर वे अग्नि में कूद पड़ीं ।।२७

वे मनस्विनी पति का ध्यान करती हुईं क्षण भर में ही भस्म हो गईं। उन्हें भस्म हुआ देखकर गण लोग क्रुद्ध हो उठे ।।२८

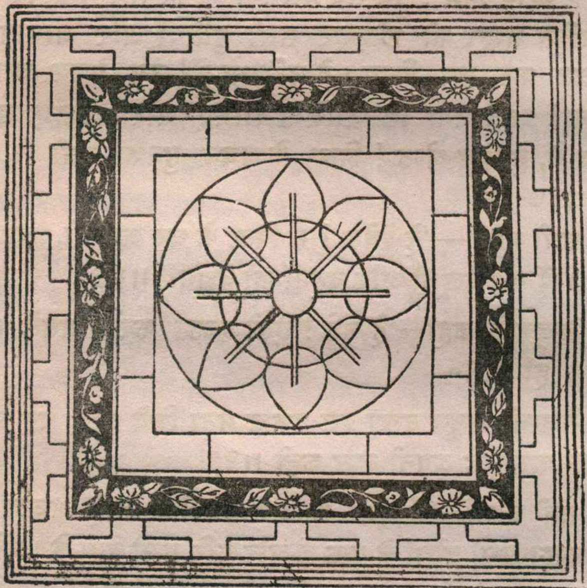

तीसरा अध्याय

[दक्ष का चरित]

मार्कण्डेय बोले—गण लोग वहाँ आए, जहाँ भगवान् महेश्वर थे और उन्हें वह सब हाल बताया, जिस प्रकार देवी दिवङ्गता हुई थीं ।।१

उन देवी को दिवङ्गता सुनकर रुद्र क्रोधित हो उठे। शिर से एक जटा उखाड़कर उन्होंने रोष-पूर्वक भूमि पर पटक दी ।।२

हे ब्रह्मन् ! उससे तीन नेत्रवाला, हाथ में त्रिशूल लिए एक पुरुष उत्पन्न हो गया और वह बोला कि 'हे प्रभो ! शीघ्र आज्ञा करें कि मैं यहाँ क्या करूँ ?' ।।३

ईश्वर ने कहा—'हे महा-बाहो, वीर-भद्र ! मेरे श्रेष्ठ कथन को सुनो। शक्तिमान् दक्ष को मार डालो और यज्ञ का भी नाश कर दो' ।।४

ईश्वर की बात सुनकर गणों के साथ महा-बली वीर-भद्र यज्ञ-प्राङ्गण में जा पहुँचे। देवों तथा दैत्यों के समूह से युक्त प्रजाओं के स्वामी प्रजापति को देखकर क्रोध से लाल आँखोंवाले, महा-तेजस्वी वीर-भद्र ने तुरन्त ही खड्ग द्वारा दक्ष का शिर काटकर उनके शरीर से अलग कर दिया और रोष-पूर्वक उसे अग्नि में फेंक दिया ।।५-७

पूषन् (द्वादश आदित्यों में से एक) देव के दाँतों को महा-बली वीर-भद्र ने उखाड़कर हे विप्रेन्द्र ! भग (दूसरे आदित्य) देव की आँखों को क्रोध से नष्ट कर डाला ।।८

इसके बाद ईश्वर को सब हाल बताने के लिये वीर-भद्र वहाँ से चल दिये। उन्होंने दुःख से व्याकुल मनवाले देवेश्वर को देखा ।।९

भूतनाथ शङ्कर को यथा-विधि प्रणाम कर उन्होंने वह सब कह सुनाया, जिस प्रकार दक्ष को मारा था ।।१०

हे द्विज-श्रेष्ठ ! दक्ष के मारे जाने पर दुःख से व्याकुल आँखों-वाले देवता लोग वहाँ आ पहुँचे और प्रणाम कर कहने लगे—।।११

।। देवा ऊचुः ।।

नमः शिवाय देवाय भूत-नाथाय वै नमः ।
नमो रुद्राय नाथाय देव-देवाय ते नमः ।।
नमः कालाय पालाय शङ्कराय नमो नमः ।
नमस्त्रिशूल - हस्ताय पशूनां पतये नमः ।।
दिग्-वाससे नमस्तुभ्यं नमस्ते गज-चर्मणे ।
ईश्वराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते भग-नेत्र-हन् ।।
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु वृद्धोक्षाय नमो नमः ।
नमः पिनाक-हस्ताय अग्नि-नेत्राय वै नमः ।
नमो हराय देवाय दक्ष-यज्ञ-विनाशिने ।
नमस्ते त्रिपुरघ्नाय नमो भूताधिपाय च ।।
नमो देवाधि-देवाय नमः कैलास-वासिने ।
नमो नाथाय क्रोधाय नमः सर्व-क्षयाय च ।।
भीमाय च नमस्तुभ्यं विरूपाक्षाय वै नमः ।
प्रसीद देव-देवेश ! प्रपन्नार्त्ति - हरो भव ।।

देव बोले—'भगवान् शिव को नमस्कार । भूतनाथ को नमस्कार । स्वामी रुद्र को नमस्कार । हे देवेश्वर ! आपको नमस्कार ।।१२

'काल को नमस्कार, पालन-कर्ता को नमस्कार । हे शङ्कर, आपको बारम्बार नमस्कार । त्रिशूल-पाणि को नमस्कार, पशुओं के स्वामी को नमस्कार ।।१३

'हे दिगम्बर ! आपको नमस्कार । हे गज-चर्म-धारी ! आपको नमस्कार । हे ईश्वर ! आपको नमस्कार । भगदेव के नेत्रों के नाशक ! आपको नमस्कार ।।१४

'हे त्र्यम्बक ! आपको नमस्कार । हे वृद्धोक्ष (श्रेष्ठ बैलवाले) ! आपको बारम्बार नमस्कार । हे पिनाक-धनुष हाथ में लेनेवाले ! आपको नमस्कार । हे अग्नि-नेत्र ! आपको नमस्कार ।।१५

'दक्ष यज्ञ का विनाश करनेवाले हे भगवान् हर ! आपको नमस्कार। हे त्रिपुर-नाशक ! आपको नमस्कार। हे भूताधिपति ! आपको नमस्कार ।।१६

'हे देवों के देव !आपको नमस्कार। हे कैलास-वासी ! आपको नमस्कार। हे नाथ ! आपको नमस्कार। हे सबके नाशक क्रोध-स्वरूप ! आपको नमस्कार ।। १७

हे भीम (भयानक) ! आपको नमस्कार। हे विरूपाक्ष (भयङ्कर नेत्रोंवाले) ! आपको नमस्कार। हे देव-देवेश्वर ! प्रसन्न हों। शरणागत के दुःख को दूर करनेवाले बनें' ।।१८

देवताओं की इन बातों को सुनकर, हे मुनि-श्रेष्ठ ! महादेव ने क्रोध त्यागकर उनसे कहा—'हे देव-गण ! मैं तुम लोगों का क्या प्रिय कार्य करूँ ! मैं उसे करूँगा, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं' ।।१९

देव-गण बोले—'हे महा-देव ! प्रजा-पति दक्ष का नाश हो जाने से विश्व कैसे चलेगा ? अतः ऐसा करें, जिससे दक्ष जीवित हो जायँ' ।।२०

महा-बुद्धिमान् महा-देव देवताओं के साथ यज्ञ-प्राङ्गण में आए और हे द्विज-श्रेष्ठ ! दक्ष के गिरे हुये शरीर को देखा किन्तु उनके शिर को कहीं न देखकर महा-मना महा-देव ने एक छाग के शिर को काट कर उनके शरीर में लगा दिया, जससे हे मुने ! दक्ष उठकर खड़े हो गये ।।२१-२३

हे ब्रह्मर्षे ! चिन्ता से व्याकुल नेत्रोंवाले महा-देव हर भी निरन्तर 'हा सती ! हा सती' कहते हुये अहर्निश चिन्ता करने लगे ।।२४

सती के विरह से उत्पन्न दुःख से, हे ब्रह्मन् ! शोक-सागर में डूबे हुये शङ्कर मोहाविष्ट होकर ब्रह्म-हत्या से युक्त अन्तर्हिता श्रेष्ठ नदी में निमग्न हो गए ।।२५

हे द्विज-श्रेष्ठ ! तब अपने में निमग्न शङ्कर को देखकर वह अन्तर्हिता नदी निरन्तर शोक से पीड़ित रहने लगी ।।२६

दक्ष के चरित को जो मनुष्य निरन्तर सुना करते हैं, वे सभी पापों से छूटकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं ।।२७

हे ब्रह्मन् ! यह परम विलक्षण चरित मैंने कहा। इसके बाद हे द्विज-श्रेष्ठ ! मैं और क्या कहूँ ? ।।२८

• • •

चौथा अध्याय

[मधु और कैटभ का वध]

मैत्रेय ने कहा—काली फिर कैसे आविर्भूत हुईं और, हे ब्रह्मन् ! पर्वत-राज की वे कल्याण-कारिणी पुत्री जिस प्रकार उत्पन्न हुईं, वह हमें बताइए ।।१

उन देव-स्वरूपा को रुद्र ने किस प्रकार पत्नी-रूप में प्राप्त किया, यह मेरी जिज्ञासा है । हे तपस्वी ब्रह्मन् ! विस्तार से कहिए ।।२

उस पवित्र, पापों को हरनेवाली, कल्याणी कथा को कहिए, जो यहाँ सभी कामनाओं की, पुण्यों की, धन-सम्पत्ति की और मोक्ष की देनेवाली है ।।३

हिमालय के गृह में दैत्य-संहारिणी काली ने जन्म लेकर जिस प्रकार विशाल-काय, अति शक्ति-शाली, दुर्द्धर्ष दैत्य-राज महिषासुर को मार कर महा-बली शुम्भ-निशुम्भ और रक्त-वीज तथा भयानक धूम्र-लोचन के बाद और भी बली चण्ड-मुण्ड का संहार किया—यह सब, हे ब्रह्मन् ! निरन्तर मुझे सन्देह है । आप सब कुछ विस्तार-पूर्वक कहिए । हे तपस्वी महात्मन् ! मैं उसे सुनना चाहता हूँ ।।४-६

मार्कण्डेय बोले—मैं सभी पापों का नाश करनेवाली इस कथा को कहता हूँ, जो संसार में लोगों को पुण्य देती है, उनमें भक्ति उत्पन्न करती है, सभी कामनाओं को पूर्ण करती है और शत्रुओं का नाश करती है ।।७

हे द्विज-श्रेष्ठ ! रम्भ और करम्भ नामक दो महान् वीर दैत्य-राज हुए । उन दो महान् वीरों ने गङ्गा किनारे तपस्या की ।।८

महा-पराक्रमी करम्भ ने गङ्गा के बीच में डुबकी लगाई । इसी समय एक विशाल ग्राह (मगर) आ गया और हे द्विज ! दैत्य-राज को पकड़कर अपने घर ले जाकर उस महा-बली दैत्य-राज को वह घड़ियाल खा गया ।।९-१०

हे विप्रेन्द्र ! भाई के मरने पर महान् यशस्वी दैत्येन्द्र रम्भ खड्ग लेकर उसका शिर काटने को उद्यत हुआ ।।११

इसी बीच लोकों के पितामह ब्रह्मा जी ने उसे मना कर यह कहा कि 'हे सुव्रत ! वर माँगो' ।।१२

रम्भ ने कहा—हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे महा-बली पुत्र दीजिए। आपकी कृपा से वह पुत्र त्रैलोक्य-विजयी होगा, इसमें सन्देह नहीं ।।१३

'ऐसा ही हो', कहकर ब्रह्मा जी ब्रह्म-लोक को चले गए। उसकी रानी ने तब तीन महा-बली पुत्रों को जन्म दिया ।।१४

ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'महिष', उसके बाद के पुत्र का नाम 'घोर' और कनिष्ठ पुत्र का नाम 'नमर' हुआ। हे द्विज ! वह बड़ा तेजस्वी और सभी देवों को जीतनेवाला था ।।१५

हे ब्रह्मन् ! महा-बली और पराक्रमी महा-वीर कैटभ के मारे जाने पर पृथ्वो कष्टों से मुक्त हो गई ।।१६

मैत्रेय ने पूछा—मधु और कैटभ नामों से प्रसिद्ध महा-बली और अत्यन्त पराक्रमी दो दैत्य-राज कैसे मारे गए ? वे दोनों दुर्द्धर्ष दुर्जेय महा-वीर किसके पुत्र थे ? ।।१७

मार्कण्डेय बोले—हे ब्रह्मन् ! प्राचीन काल में प्रलय-काल में जनार्दन विष्णु योग-निद्रा में सोए हुए थे। उनके कानों की मैल से मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न हुए ।।१८

विष्णु की नाभि से निकले हुए पद्म से उत्पन्न और प्राणियों के सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा को देखकर वे दोनों महा-वीर क्रोधित होकर उन्हें मार डालने को उद्यत हुए ।।१९

लोकों के पितामह ब्रह्मा ने उन्हें इस प्रकार आक्रामक देखकर और यह समझकर कि वे दोनों बल में उनसे अधिक हैं, चिन्ता से व्याकुल नेत्रों से देखने लगे ।।२०

'मैं अकेला हूँ और मुझे मारने की इच्छावाले ये दोनों दुष्ट बलवान् हैं। बल में अधिक ये दोनों भयानक महा-वीर कैसे मारे जायँ ?' ।।२१

इसी समय अदृश्य वाणी बोली—'हे देव-देवेश ! आप आदि-देव जनार्दन की स्तुति करें' ।।२२

देवता द्वारा कही वाणी को सुनकर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मा ने मन-ही-मन देव-देव जगन्नाथ का स्मरण किया ।।२३

ब्रह्मा जी ने कहा—

नमोऽनन्ताय देवाय केशवायादि-चक्रिणे ।
सर्वगायादि-देवाय भूतानां पतये नमः ।।
नमः कमल-नाभाय नमस्ते जल-शायिने ।
नमः कमल-नेत्राय नमः पङ्कज-मालिने ।।
नमः कृष्णाय रामाय हरये माधवाय च ।
नमो भगवते तुभ्यं यादवेन्द्राय वै नमः ।।
नमो गरुड-नाथाय नमस्ते शेष-शायिने ।
नमस्ते चक्र-हस्ताय वामनाय नमो नमः ।।

आदि-चक्र-धारी, अनन्त, देव, केशव को नमस्कार । सर्व-व्यापी आदि-देव, सभी प्राणियों के स्वामी को नमस्कार । जल में शयन करनेवाले पद्म-नाभ को नमस्कार । कमल-नेत्र और पद्म-माला-धारी को नमस्कार । राम, कृष्ण और माधव को नमस्कार । हे भगवन् ! आप यादवेन्द्र को नमस्कार । गरुड़-नाथ, शेष-शायी को नमस्कार । चक्रधारी को नमस्कार, वामन को बारम्बार नमस्कार ।।२४-२७

इस प्रकार जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किए जाने पर जगदीश्वर बोले—'हे पद्म-सम्भव ब्रह्मा ! आप मत डरें । मैं इन दोनों श्रेष्ठ दानवों को मारूँगा ।' और शत्रु-नाशक भगवान् उन दोनों से युद्ध करने लगे ।। २८-२९

पाँच हजार वर्षों तक अति भयङ्कर युद्ध होता रहा । तब विश्वेश्वर आदि-देव विष्णु चिन्ता करने लगे ।।३०

'युद्ध में ये दोनों दुष्ट असुर मुझसे अधिक बलवान् हैं ।' इसी समय अदृश्य वाणी बोली—'हे जगन्नाथ ! आप देवी की स्तुति करें । निश्चय ही आपको सफलता मिलेगी' ।।३१

श्री भगवान् स्तुति करने लगे—

कमलाक्षि ! नमो देवि ! नमः पङ्कज-वासिनि !
नमः श्रियै सरस्वत्यै नमः कल्याण-दायिनि !
पराऽसि परमात्माऽसि देवि ! त्वं सर्व-मङ्गला ।
भूत-धात्री जगद्धात्री ध्वान्ता सर्वस्य भाविनी ।।
श्रीस्त्वमेव सदा लोके ह्रीस्त्वं वै सर्व-कारिणी ।
स्वाहा त्वं च सुधा त्वं च धृतिः कीर्तिस्तथा परा ।।
मोहिनी योग-निद्रा त्वं ज्योती-रूपा सनातनी ।
परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।।
सन्ध्या-रूपा च नित्या च रात्रि-रूपा विभाविनी ।
ॐकार-रूपाऽसि सदा निर्गुणा सगुणा शुभा ।।

हे कमल-नयने ! हे देवि, नमस्कार । हे कमल-वासिनि ! नमस्कार । श्री को नमस्कार, सरस्वती को नमस्कार, हे कल्याण-प्रदे ! नमस्कार । हे देवि ! आप परा हैं, परमात्मा हैं, आप सर्व-कल्याणी हैं । प्राणियों का पालन करनेवाली, संसार को धारण करनेवाली और सभी की भावना करनेवाली हैं । विश्व में आप ही सदा 'श्री' और 'ह्री' रूप से सभी कुछ सम्पन्न करनेवाली हैं । आप स्वाहा और सुधा हैं, धृति, कीर्ति और परा हैं । आप मोहिनी और योग-निद्रा हैं, ज्योति-रूपा सनातनी हैं । श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ आप ही श्रेष्ठतमा परमेश्वरी हैं । सन्ध्या-रूपा, नित्या, रात्रि-रूपा, विभाविनी और ॐकार-रूपा सदैव निर्गुणा तथा सगुणा हैं और कल्याणी हैं ।।३२-३६

देवेश्वर उन विष्णु द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर वे सनातनी, नित्या, योग-निद्रा प्रकट हो गईं ।।३७

वे बोलीं—'मैं तुम्हारी सहायता करूँगी और इन प्रसिद्ध मधु और कैटभ दोनों असुरों को मोह में डाल दूँगी ।' तब अत्यधिक बल से उन्मत्त वे दोनों असुर जगन्माया द्वारा विमुग्ध हो गए ।।३८

मधु और कैटभ ने विष्णु से कहा—'हे महा-वीर ! हम दोनों तुम्हारे युद्ध से प्रसन्न हैं । तुम्हारे मन में जो इच्छा हो, उसके अनुसार

वर माँगो । तीनों लोकों में जो कुछ दुर्लभ है, उसे भी हम तुम्हें प्रदान करेंगे' ॥३९

श्री भगवान् बोले—'यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो, तो मेरे द्वारा तुम दोनों मारे जाओ, यही मेरा अभीष्ट है । इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य किसी भी वर की आवश्यकता नहीं है' ॥४०

दोनों वीरों ने कहा—'तुम्हारे द्वारा मरना हम दोनों के लिए श्रेयस्कर है किन्तु हमें वहाँ मारो, जहाँ पृथ्वी जल में डूबी न हो' ॥४१

दोनों दैत्यों द्वारा इस प्रकार निर्दिष्ट किए जाने पर जनार्दन विष्णु ने उन दोनों के सिर अपने चक्र की तीक्ष्ण धार से काट डाले ॥४२

मार्कण्डेय बोले—वही चण्डिका पुनः प्राचीन काल में विष्णु द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रकट हुईं और उन्होंने जिस प्रकार दैत्य महिष का बध किया, उसे तुम लोगों से कहता हूँ ॥४३

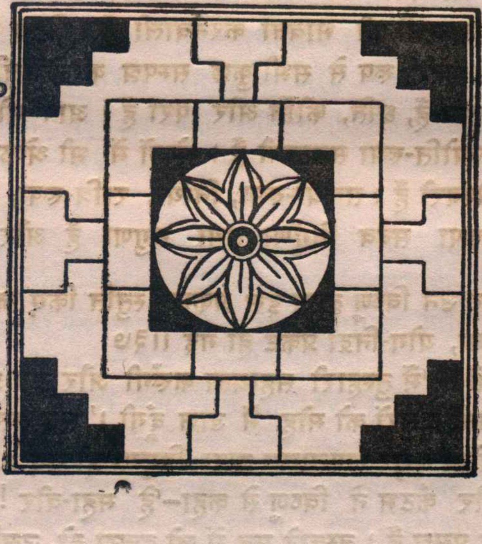

पाँचवाँ अध्याय

[घोर-बध में नदी का वर्णन]

मार्कण्डेय बोले—सभी महा-बलवान् पराक्रमी दैत्य-समूह महिष को अग्रणी बनाकर सशस्त्र होकर चल पड़े। यह सुनकर कि सारे दैत्य-समूह अस्त्र-शस्त्र लेकर आ पहुँचे हैं, परम तेजस्वी इन्द्र ने भी देवताओं को बुलाकर उनसे कहा—॥ १-२

इन्द्र ने कहा—'चन्द्र-सूर्य-प्रमुख सभी महा-पराक्रमी देव-नायक मेरी कल्याण-कारिणी बात को सुनें। देव-गण जब एकता-बद्ध रहेंगे, तभी वे दानवों को जीत पायेंगे' ॥ ३

इन्द्र की बात को मानकर सभी देवता अपने अस्त्र-शस्त्रों और वाहनों से सज्जित होकर आए तथा उन्हें अपना अग्रणी बनाकर युद्ध के लिए चल पड़े ॥ ४

तब सभी लोकों का विनाश करनेवाला भयङ्कर युद्ध पुनः हुआ और सभी देव-गणों को जीतकर श्रेष्ठ दैत्यों ने शोभा प्राप्त की ॥ ५

हारकर देवता लोग अपनी देह को छिपाकर मनुष्य-रूप बनाकर पृथ्वी पर छद्म-वेष में इधर-उधर घूमने लगे ॥ ६

बल-हीन और शस्त्र-रहित इन्द्रादि वे सभी श्रेष्ठ देवता दुःखी होकर ब्रह्मा की शरण में पहुँचे और महिष के अत्याचार का इस प्रकार वर्णन करने लगे—॥ ७

'हे ब्रह्मन्! महिष के द्वारा निकाले गए हम सभी मनुष्यों के समान पृथ्वी पर भटक रहे हैं। हम क्या करें और कहाँ जाएँ?' ॥ ८

देवताओं की बात सुनकर और उनकी बुरी दशा को देखकर कमल-जन्मा प्रजा-पति ब्रह्मा मन-ही-मन देवाधिदेव महेश्वर का ध्यान करने लगे ॥ ९

ब्रह्मा ने स्तुति की—

नमः शिवाय देवाय देव-देवाय ते नमः।
नमो घोराय भीमाय नमः कैलास-वासिने ॥

नमः पिङ्गल-नेत्राय नमस्ते विश्व-रूपिणे ।
नमो हराय कालाय भीम-रूपाय ते नमः ।।
त्रिपुरघ्नाय देवाय तारकघ्नाय वै नमः ।।

हे देवाधिदेव शिव ! आपको नमस्कार । कैलास-वासी घोर, भीम, देव को नमस्कार । पिङ्गल-नेत्र को नमस्कार, विश्व-रूपी को नमस्कार । हर और काल को नमस्कार । हे भीम-रूप ! आपको नमस्कार । त्रिपुरघ्न देव और तारकघ्न को नमस्कार ।।१०-११

विश्व के स्रष्टा उन ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर पृथ्वी-पति महा-देव शङ्कर ने यह बात कही—।।१२

'हे ब्रह्मन् ! देवताओं की रक्षा के लिए आप विष्णु की शरण में जायँ । वे भगवान् देवेश ही आपकी कामना को सम्पन्न करेंगे' ।।१३

इस बात को सुनकर ब्रह्मा अब विष्णु के पास गए और उन्होंने तीनों लोकों के स्वामियों के ईश्वर को तथा महान् क्षीर-सागर को देखा ।।१४

हे श्रेष्ठ द्विज ! अब ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और सभी देवता चक्र-धारी विष्णुदेव की स्तुति करने लगे ।।१५

देवता बोले—

नमो भगवते तुभ्यं देव-देवाय चक्रिणे ।
हरये वासुदेवाय हृषीकेशाय शाश्वते ।।
माधवाय नमस्तुभ्यं जगन्नाथाय वै नमः ।
गोविन्दायादि-देवाय निर्गुणाय गुणाय च ।।
मधु-सूदनायानन्ताय निजाय परमात्मने ।
नमस्ते पद्म-नाभाय नमः सागर-शायिने ।।

हे देवाधिदेव चक्र-धारी शाश्वत भगवान् विष्णु, हरि, वासुदेव, हृषीकेश ! आपको नमस्कार । हे माधव ! आपको नमस्कार । हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार । हे आदि-देव, गोविन्द, निर्गुण और सगुण, मधु-सूदन, अनन्त, निज-स्वरूप, पद्म-नाभ, क्षीर-समुद्र-शायी, परमात्मा ! आपको नमस्कार ।।१६-१८

देवताओं के द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जाने पर विश्व की भावना करनेवाले विश्वात्मा भगवान् हरि देवताओं के समक्ष प्रकट हो गए ॥१९

श्री भगवान् बोले—'तुम लोगों की स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। यहाँ आने का कारण क्या है ? हे देवताओं ! कहो, निस्सन्देह उसके अनुसार मैं कार्य करूँगा। लोकों और सभी जीवों के पालन-पोषण और दुष्टों के विनाश के कर्म मेरे ही अधीन हैं' ॥२०-२१

देवताओं ने कहा –'पृथ्वी पर महिषासुर नामक दैत्य उत्पन्न हुआ है। वह साधुओं को पीड़ित करता है, जिससे धार्मिक कर्म समाप्त हो गए हैं। युद्ध में उस दुष्ट द्वारा पराजित होकर हम दुःखी हैं और आपकी शरण में आए हैं। उसके वध का उपाय सोचें' ॥२२-२३

देवताओं की बात सुनकर और दैत्य के दुष्कर्मों को जानकर प्राणियों के कल्याण में सदा तत्पर रहनेवाले विष्णु उस असुर पर क्रुद्ध हो उठे ॥२४

विश्वात्मा विष्णु के क्रोध से कृष्ण-वर्णा एवं महा-शक्ति-पराक्रम-शालिनी प्रचण्ड कालिका आविर्भूत हुईं। वे ही सभी लोकों को जन्म देनेवाली, विश्व-पालिका और सृष्टि की भावना करनेवाली हैं ॥२५

सभी देवताओं ने उन ज्योतिर्मयी सनातनी देवी को देखकर हर्षित होकर उन्हें अलग-अलग अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए ॥२६

देवेश्वर विष्णु ने उन्हें दैत्य-नाशक चक्र दिया और शङ्कर ने त्रिपुर-नाशक त्रिशूल उन्हें प्रदान किया ॥२७

पितामह ब्रह्मा ने उन्हें जलाघात करने के लिए कमण्डलु दिया और महा-बुद्धिमान् सहस्र-नेत्र इन्द्र ने उन्हें वज्र प्रदान किया ॥२८

अग्निदेव ने उन्हें सुदृढ़ उत्तम धनुष दिया और पवनदेव ने भी उन्हें बाणों से भरा तरकस, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र तथा अभेद्य कवच प्रदान किया ॥२९

अठारह भुजाओंवाली और महा-नाद करनेवाली देवी महा-माया ने भी बड़े ऊँचे स्वर में सभी लोकों को भयभीत करनेवाला सिंह-नाद किया ॥३०

उस भयङ्कर नाद से तीनों लोक गूँज उठे। उस महा-नाद को सुनकर सारे दैत्य भी क्षुब्ध हो गए और उन्होंने दुर्द्धर्ष महिष के पास पहुँचकर पूछा—'हे राजन्! यह भय-दायक कैसा गर्जन सुनाई पड़ रहा है ?' ।।३१-३२

महिषासुर बोला—'हे पराक्रमी घोर! अपनी सेना सहित जाकर इस नाद के कारण का पता लगाकर तुरन्त वापस आओ' ।।३३

उपहास-पूर्वक घोरासुर महान् पर्वत विन्ध्य पर पहुँचा। वहाँ उसने अठारह भुजाओं से युक्त उन महा-देवी को देखा ।।३४

विष्णु की वे दिव्य स्वरूपा, मनोहारिणी माया सिंह पर विराजमाना थीं, अति शक्ति-शालिनी, महान् उत्साह से भरी हुई और सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभिता थीं ।।३५

गर्जन करनेवाली उन देवी को जानकर अति भय-भीत होकर उसने महिष को सूचित करने के लिए एक दूत को भेज दिया ।।३६

उस दूत ने जाकर देवी के प्रचण्ड गर्जन का वर्णन किया और बताया कि अठारह भुजावाली, महा-शक्ति-पराक्रम-शालिनी, कृष्ण-वर्णा काली सभी देवों का स्वरूप धारण किए, सिंह पर आसीना, गर्जन करती हुई घोर चण्डी-रूप में ऊँची विन्ध्य-शिला पर विराज-माना हैं ।।३७-३८

हे ब्रह्मन्! उस वर्णन को सुनकर महा-बली वीर महिष कुपित हो उठा और उसने अत्यन्त बुद्धिमान् दूत दुन्दुभि को घोर के पास भेजा ।।३९

'हे दुन्दुभे! तुम वहाँ जाओ, जहाँ घोर ने घेरा डाल रखा है। हे वीर! उस देवी को नीति से तथा शक्ति-प्रयोग से ले आओ। साथ ही घोर से कहना कि जैसा कार्य हो, वैसा ही उपाय करो।' महिष की बात सुनकर दुन्दुभि भी वहाँ पहुँच गया ।।४०-४१

मार्कण्डेय ने कहा—दुन्दुभि की बात सुनकर क्रोधाविष्ट होकर घोर ने श्रेष्ठ पर्वत उक्त विन्ध्याचल को घेर लिया ।।४२

वहाँ घोर शब्द करती हुई महा-शक्ति-पराक्रम-शालिनी उन चण्डिका ने बाणों को छोड़ा और दैत्यों का विनाश किया ।।४३

उस सेना को विनष्ट होते देखकर महा-बलवान् घोर ने कुपित दैत्यों के साथ उन देवी को चारों ओर से घेर लिया और तब वे दैत्य सर्प-विष के समान मारक बाणों की वर्षा करने लगे ।।४४

गिरते हुए बाणों को देखकर प्रचण्ड बलवाली महा-शक्ति-शालिनी चण्डिका ने तीक्ष्ण धारवाले चक्र द्वारा उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया ।।४५

उन बाणों को निष्फल देखकर सभी दैत्यों ने घोर शब्द करते हुए क्रोधोन्मत्त होकर सैकड़ों हजार बाण फेंके । हे श्रेष्ठ द्विज ! बाणों की उस वर्षा से अम्बिका को कोई हानि नहीं पहुँची ।।४६

तब दैत्य-नाशिनी भगवती चण्डिका ने क्रुद्ध होकर उन बाण-समूहों को उसी प्रकार नष्ट कर डाला, जिस प्रकार सूर्य कुहरे को नष्ट कर देता है ।।४७

युद्ध की कामना से पास आये उन दैत्यों को देवी ने मार डाला और उनके रक्त-समूह से प्राण-भय उत्पन्न करनेवाली नदी वहाँ उत्पन्न हो गई ।।४८

वह नदी वेतालों और सैकड़ों चिल्लाती हुई शिवाओं से भर गई । राक्षसों से भरी हुई वह नदी यक्ष, गन्धर्व और पिशाचों के द्वारा भी पार नहीं की जा सकती थी ।।४९

हे मुने ! रक्त-समूह से भरी हुई, अति भीषणा, महा-भयङ्करी उस नदी में पैर, शिर व भुजाओं से रहित दैत्य उतरा रहे थे ।।५०

इस प्रकार की नदी को देखकर आरक्त नेत्रोंवाला महा-दैत्य घोर वहाँ आ पहुँचा, जहाँ कात्यायनी विराजमाना थीं ।।५१

छठा अध्याय

[घोरासुर का बध]

मार्कण्डेय बोले—तब शत्रु के नगरों को जीतनेवाला महा-वीर, भयानक पराक्रमी घोर क्रोधित होकर बहुत-सी भयङ्कर करोड़ों सेनाओं के साथ और हाथी, घोड़े, रथ से युक्त शत्रु-नाशक सेनापतियों से घिर कर उस भयानक नदी को पारकर आ पहुँचा। उसने अठारह भुजाओंवाली प्रचण्ड चण्डिका को देखा ।।१-३

तब सभी लोकों का नाश करनेवाला युद्ध प्रारम्भ हुआ। घोर ने चण्डिका को चारों ओर से छाप लिया, जैसे सूर्य को कुहरा ढँक देता है ।।४

हे मुनि-श्रेष्ठ ! यह देखकर आकाश में स्थित देवता हाहाकार करने लगे। तब भयानक पराक्रमवाली भगवती चण्डिका क्रुद्ध हो उठीं ।।५

उन्होंने युद्ध करने के लिए आए उन सभी दैत्यों का निवारण कर दिया और देवों तथा दैत्यों सभी के लिए प्रचण्ड शौर्यवाली चण्डिका कठिनाई से देखी जानेवाली हो गईं ।।६

मध्याह्न के समय जिस प्रकार सूर्य अपने प्रखर तेज के कारण देखा नहीं जा सकता, उसी प्रकार चण्डिका शोभायमान हुईं। महा-वीर घोर ने भी सभी सेनाओं सहित बाण-वर्षा कर प्रचण्ड-पराक्रम-वाली चण्डिका को आच्छादित कर दिया, जैसे जल-वर्षा द्वारा मेघ मेरु-पर्वत के शिखर को ढँक देते हैं। शत्रु-शक्ति-नाशक घोर ने ऐसी ही बाण-वर्षा की ।।७-८

तब हे ब्रह्मन् ! उन चण्डिका ने सभी बाणों को नष्ट कर दिया और पुनः आनेवाले उन सब बाणों को चक्र द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिया ।।९

उन्हें टुकड़े-टुकड़े किया गया देखकर घोर अति क्रोधित हो उठा। दैत्यों की हित-कामना से वह चिल्लाया कि 'यह भयानक रूप-वाली भयावनी देवी शीघ्र ही मार डाली जाने योग्य है।' हे मुनि ! घोर की इस बात को सुनकर भयानक मुखवाले सभी दैत्य-योद्धाओं

ने उन देवी को चारों ओर से घेर लिया। उस समय युद्ध में दानव अग्नि-चक्र की प्रतिमा के समान दिखाई देने लगे ।।१०-१२

तब प्रचण्ड पराक्रमवाली चण्डी ने क्रुद्ध होकर उन सभी दैत्यों को उसी प्रकार विदीर्ण कर डाला, जैसे सूर्य कुहरे को नष्ट कर देता है ।।१३

भयानक स्वरूपा महा-शक्तिवाली वे चण्डिका देखने में कष्ट-प्रदा हो गईं। मध्याह्न के सूर्य के समान वे शोभा पाने लगीं ।।१४

महा-भयानक, भीषण पराक्रमी घोर भी पुनः क्रोधित होकर बहुत से वीरों के साथ युद्ध के लिए निश्चय करके आया ।।१५

उसने अपने धनुष को फैला कर बाणों को शीघ्रता से लेते हुए महा-बल-शालिनी देवी महा-माया को उनसे बींध दिया ।।१६

तब देवी चण्डिका भी क्रोधोन्मत्त होकर उन बाणों को पकड़ कर उनके दो-दो टुकड़े कर बारम्बार इधर-उधर फेंकने लगीं ।।१७

हे श्रेष्ठ द्विज ! महा-शूर घोर ने पुनः सर्प-विष के समान घातक बाणों को फेंक कर उन चण्डिका के हृदय को बेधा ।।१८

तब भगवती ने क्रुद्ध होकर अतुल तेजवाले चक्र द्वारा सर्प-विष के समान उन सभी बाणों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए ।।१६

महा-पराक्रमी और अति तेजस्वी दुरात्मा दैत्य घोर ने तब सैकड़ों और हजारों बाणों की झड़ी लगा दी ।।२०

वे देवी बाण-समूहों से ढँक गईं, जैसे धुआँधार कुहरे से सूर्य छिप जाता है। तब देवों में पुनः भयङ्कर हाहाकार का शोर मच गया ।।२१

हे मुनि-श्रेष्ठ ! उस समय, जैसे मेघ वायु द्वारा दूर हट जाते हैं, वैसे ही देवी ने युद्ध करने के लिए उन सब बाण-समूहों को छिन्न-भिन्न कर दिया ।।२२

तब देवी उसी प्रकार शोभायमान हुईं, जैसे मेघ से मुक्त होकर सूर्य। साथ ही जगदम्बा अपने प्रखर तेज के कारण देखने में उसी प्रकार असाध्य हो गईं, जैसे वृष राशि में प्रविष्ट सूर्य देखा नहीं जा सकता ।।२३

तब समस्त सेनाओं से सम्पन्न महा-वीर घोर ने उच्च स्वर में सिंह-नाद कर धनुष खींचा और शीघ्रता से सर्प-विष के समान तीव्र बाणों को पकड़कर, हे श्रेष्ठ द्विज ! उस महा-बली दैत्यराज ने उन्हें छोड़ दिया ।।२४-२५

उन बाणों ने देवी के सुलक्षणों से युक्त शरीर को भेदन किया। फिर वे सुनहले पङ्खवाले और तेज नोकवाले बाण पृथ्वी पर जा गिरे ।।२६

दिव्य देह से उत्पन्न महान् रक्त-समूह बह निकला। तब देवताओं के स्वरूपवाली वे देवी काली क्रोधित हो उठीं ।।२७

नवीन शरीर से सम्पन्न होकर, विशाल-काया, महा-पराक्रमी परमेश्वरी ने दिव्य धनुष को विस्तीर्ण कर गर्जना की ।।२८

उस गर्जना से तीनों भुवन काँप उठे। साथ ही उन्होंने पर्वत पर मेघ-जैसी बाण-वर्षा की ।।२९

उन बाणों ने भयानक पराक्रमी घोरासुर तक पहुँचकर उसके हजारों घाव कर दिए, जिनसे रक्त की बहुत बड़ी धारा बह चली ।।३०

धातु-युक्त पर्वत के समान दैत्य-राज उस समय विराजमान था। उसके रक्त से हजारों भयानक दत्य उत्पन्न हो गए ।।३१

हे श्रेष्ठ मुनि ! भगवती ने उस दैत्य का शिर काट डाला। उसके घावों से निकले रक्त-बिन्दुओं से नए-नए महान् असुर उत्पन्न हो गए ।।३२

तब हे श्रेष्ठ द्विज ! घोर नामक महा-बली असुर करोड़ों रूपों में हो गया ! उन दैत्यों से तीनों लोक व्याप्त हो गए ।।३३

यह देखकर दिव्य-स्वरूपा भगवती देवी क्रोधित हो उठीं। तब वे चण्डिका देवी करोड़ों रूप धारण करनेवाली बन गईं ।।३४

भयानक पराक्रम करनेवाले घोर नामक एक-एक दैत्य-राज को पकड़कर चण्डिका हजारों किरणों के समान शोभायमान हुईं ।।३५

माया द्वारा उत्पन्न समस्त असुरों के मूल-स्वरूप, महान् उग्र एवं श्रेष्ठ दैत्य को उन भगवती ने मार गिराया। प्रसन्न होकर देवता लोग उनकी स्तुति करने लगे और आकाश नृत्य तथा गायन से गूँजने लगा ।।३६

• • •

सातवाँ अध्याय

[चिक्षुर का बध]

मार्कण्डेय बोले—घोर का मारा जाना सुनकर महिष क्रोध से मूर्छित हो गया और उसने दैत्येन्द्र नमर तथा चिक्षुर को जाने का आदेश किया ॥१

अति उग्र व्यक्तित्ववाले, महेन्द्र-स्वरूप, महा-बली घोर को मारा गया सुनकर तुरन्त ही तब नमर नाम से प्रसिद्ध महा-बली, मनस्वी दैत्य चल पड़ा ॥२

उन भयङ्करी, महा-शक्ति-शालिनी कल्याणी को सिंह पर बैठी हुई और नवीन धनुष लिए युद्ध-क्षेत्र में बारम्बार गर्जन करती हुई देखकर महा-बली नमर को बड़ा क्रोध हुआ ॥३

क्रोध में भरकर महा-बली, भयानक पराक्रमी, दैत्यराज नमर ने विशाल धनुष फैलाकर पृथ्वी को कँपाते-से हुए सिंह-गर्जना की और जल-धर मेघ के समान बाण-वर्षा करने लगा ॥४-५

प्रचण्ड पराक्रमवाली उन चण्डी के हृदय पर उसने चोट पहुँचाई। तब कोपाविष्टा होकर भगवती चण्डी ने तुरन्त ही बाणों को लेकर महा-बली और पराक्रमी दैत्येन्द्र को बींध दिया। हे श्रेष्ठ मुनि! बाणों की चोट से तिलमिला कर वह बारम्बार काँपने लगा, जैसे वायु के वेग से केले का वृक्ष कम्पित होता है ॥६-७

महा-बली दैत्य-राज, दानवों में श्रष्ठ, नमर ने धीरज का सहारा लेकर पुनः शत्रु-नाशक सुनहली पीठवाला, सुदृढ़, दिव्य श्रेष्ठ धनुष लेकर उसे खींचा और तुरन्त ही सुनहले पङ्खवाले, तैल द्वारा धुले हुए, सर्प-विष के समान घातक बाणों को लेकर उन दैत्य-नाशिनी, महा-भयङ्करी चण्डिका को बींध दिया ॥८-१०

हे ब्रह्मन्! तब क्रोध से लाल नेत्रों-वाली उन चण्डिका ने सर्प-विष के समान उक्त सभी बाणों को चूर-चूर कर दिया ॥११

फिर उन्होंने वज्र के समान भयानक पाँच बाण लेकर उनसे दैत्य-श्रेष्ठ, वीर नमर के हृदय को बींध दिया ॥१२

उन देवी द्वारा हृदय के बिंध जाने से वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। होश में आकर दैत्य-राज ने पुनः युद्ध करने का निश्चय किया ॥१३

श्रेष्ठ धनुष को खींच कर उसने सिंह-नाद किया। उस महान् नाद से तीनों लोक काँप उठे ॥१४

हे मुनि-श्रेष्ठ ! दैत्य-श्रेष्ठ नमर ने दस बाण लेकर उनसे देवी के ललाट पर चोट की ॥१५

तब भयानक पराक्रमवाली महा-शक्ति-शालिनी देवी चण्डिका ने क्रोध में भरकर पाँच हजार बाणों को लेकर, हे द्विज-श्रेष्ठ ! उस वीर की भुजाओं के बीच में मारा। तब हे मुनि-श्रेष्ठ ! दैत्य-राज नमर ने क्रुद्ध होकर सर्प-विष के समान घातक बहुत से बाण लेकर देवी के सिंह को और स्वयं देवी को बींध दिया ॥१६-१८

नमर द्वारा फेंके उन सभी बाणों को उन देवी चण्डिका ने छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर कुपिता देवी ने क्रोधपूर्वक चक्र को उठा लिया ॥१९

हे द्विज-श्रेष्ठ ! उस नमर का उन्होंने सिर काट दिया। दैत्य नमर के मारे जाने पर महा-बली चिक्षुर भी 'हाय, हाय, नमर !' कहते हुए दुःख से व्याकुल-नेत्र होकर बहुत-सी सेनाओं के साथ आ पहुँचा ॥२०-२१

उस दैत्य-राज ने सुदृढ़ धनुष और सुनहले पङ्खवाले बहुत से खून पीनेवाले भयङ्कर नाराच बाणों को लेकर देव-स्वरूपा देवी की ओर फेंके। हे श्रेष्ठ द्विज ! उन देवी ने भी उच्च स्वर से निनाद किया ॥२२-२३

शङ्ख, चक्र, खड्ग और मुद्गर धारण करनेवाली, सिंह की पीठ पर विराजमाना, दैत्य-सेना नाश करनेवाली नित्या देवी ने उन खून पीनेवाले नाराच बाणों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और तीक्ष्ण धारवाले चक्र के द्वारा उन प्राणि-पालिका नित्या चण्डिका देवी ने सारथि के साथ रथ को नष्ट कर दिया ॥२४-२५

घोड़े और सारथि के मर जाने पर तीक्ष्ण नोकवाले खड्ग और चीते की खाल की बनी सुदृढ़ ढाल लेकर क्रुद्ध चिक्षुर देवी की ओर दौड़ा ॥२६

उस महा-बली दैत्य को खड्ग हाथ में लिए हुए आता देखकर भयङ्कर पराक्रमवाली उन देवी चण्डिका ने पुनः अट्टहास किया और उसके खड्ग को चूर-चूर कर ढाल के दो टुकड़े कर दिए ।।२७

खड्ग को नष्ट हुआ देखकर क्रोध से लाल आँखोंवाले चिक्षुर ने चण्डिका को मारने के लिए प्रस्तुत होकर भयानक मुद्गर हाथ में लिया ।।२८

उस मनस्वी चिक्षुर द्वारा फेंके शत्रु-नाशक मुद्गर को भी उन देवी ने दूर फेंक दिया ।।२९

हे ऋषि विप्र ! मुद्गर को व्यर्थ हुआ देखकर दैत्य-श्रेष्ठ चिक्षुर ने शक्ति हाथ में ली और देवी को मारने के लिए वह पास आ गया ।।३०

प्रचण्ड पराक्रमवाली चण्डिका ने उसे आता देखकर, देवताओं के देखते-देखते, उसके शरीर से सिर को काटकर अलग कर दिया ।।३१

हे द्विज-श्रेष्ठ ! मारा गया दैत्य जड़-कटे वृक्ष के समान गिर पड़ा । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार दिव्य-स्वरूपा देवी के द्वारा सेनाओं और वाहनों के साथ दैत्य-सेनापति चिक्षुर मारा गया ।

आठवाँ अध्याय

[महिषासुर का बध]

मार्कण्डेय बोले—वीर नमर और चिक्षुर को मरा हुआ सुनकर दैत्य-राज महिष भी महती सेनाओं के साथ आ पहुँचा ।।१

हे ब्रह्मन् ! महिष के आगे-आगे करोड़ों हजार दैत्य-सेनाओं से घिरा हुआ अन्धक चला ।।२

करोड़ों सैनिकों सहित वहाँ तारक भी गया। महा-वीर, महा-विशाल, महा-बली विडालस्या उसके आगे-आगे दसों हजारों की संख्या में चले। हे मुने ! महा-बली एवं पराक्रमी काबन्ध दैत्य दस हजार सेना-दलों के सहित गए ।।३-४

महा-बली काम्बोज, शक और चीन-गणों के सभी महा-बली दैत्य-वीर सेनाओं सहित गए ।।५

तभी यवन, सौभक, आलेय-गणों के विशालकाय महा-शक्ति-शाली दैत्य भी हजारों सेनाओं से घिरकर गए ।।६

हे श्रेष्ठ-द्विज ! महा-वीर कालकेय-गण करोड़ों दैत्य-वीरों के साथ युद्ध करने की इच्छा से गए ।।७

ये सब और धूम्राक्ष, धूम्रकेतु, धूम्र-माली, धुन्धु, धूम्र-लोचन, शुम्भ-निशुम्भ, चण्ड, मुण्ड नामक महा-वीर तथा अन्य बहुत से सभी दैत्य जा पहुँचे ।।८-९

घोर का महा-बली वीर पुत्र रक्त-बीज और महिष के सुक्षेप और सुन्दक नामक दो पुत्र भी गए ।।१०

इन सभी और अन्य बहुतों से घिरे हुए बली महिषासुर ने महा-पराक्रमवाली उन महा-माया को सिंह पर चढ़ी हुई देखा ।।११

सभी दैत्य योद्धाओं ने पर्वत, वन, उपवन सहित समस्त पृथ्वी को कँपाते हुए अलग-अलग सिंह-नाद किया ।।१२

हे विप्रर्षि ब्रह्मन् ! इसी बीच भयानक पराक्रमवाली चण्डिका देवी ने पृथ्वी-तल पर सिंह-नाद किया। उस महान् नाद से तीनों लोक काँप उठे ।।१३

तब महा-वीर, श्रेष्ठ दैत्य महिष ने कुपित होकर उत्तम पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्याचल को घेर लिया ।।१४

प्रचण्ड एवं दिव्य पराक्रमवाली चण्डिका देवी अब पर्वत से उतर आईं और दैत्यों से युद्ध करने लगीं ! ।।१५

तब भयानक पराक्रमवाले दैत्य-राज महिष क्रोधित होकर रक्त पीनेवाले तीक्ष्ण नाराच बाणों की वर्षा करने लगा ।।१६

हे श्रेष्ठ द्विज ! देव-रूपिणी उन चण्डिका देवी ने सर्प-विष के समान घातक बाणों को नष्ट कर डाला ।।१७

समस्त सेनाओं को साथ लेकर महा-वीर महिष ने भी दिव्य, सुदृढ़ और स्वर्ण-भूषित धनुष ले लिया ।।१८

सर्प-विष के समान घातक और स्वर्ण-भूषित बाणों को लेकर और धनुष को फैलाकर उस महा-वीर ने मनमानी करनेवाली चण्डिका पर प्रहार किया ।।१९-२०

दुष्टात्मा महिष के द्वारा बाणों से बिद्ध हुई उन देवी भगवती ने कुपित होकर तुरन्त ही चक्र ले लिया ।।२१

उस दैत्य-राज के साथ भगवती का युद्ध होने लगा, जो सभी देवताओं को भय-दायक था। भगवती ने दैत्य-राज के प्रति चक्र फेंका ।।२२

हे महा-मुने ! महा-वीर दैत्येन्द्र ने भी चक्र लेकर वेग के साथ फेंका, जिससे भगवती का चक्र छिन्न-भिन्न हो गया ।।२३

तब हे ब्रह्मन् ! क्रोध से लाल आँखोंवाली भगवती ने उच्च स्वर से सिंह-नाद कर तुरन्त ही बाणों को लिया ।।२४

हे श्रेष्ठ मुनि ! उनसे दैत्येन्द्र के हृदय पर प्रहार किया। वे तीक्ष्ण बाण उसके हृदय को भेदन कर तुरन्त ही पृथ्वी पर गिर पड़े ।।२५

तब महा-बली और पराक्रमी दैत्येश्वर ने क्रोधित होकर देव-सेना को विनिष्ट करनेवाली भयानक शक्ति फेंकी ।।२६

उस शक्ति को आता हुआ देखकर भयानक पराक्रम करनेवाली चण्डिका ने चक्र के द्वारा उसके दो टुकड़े कर दिये और वह पृथ्वी पर गिर पड़ी ।।२७

हे श्रेष्ठ मुनि ! उसे निष्फल होकर गिरी हुई देखकर महिष ने क्रोध से उन्मत्त होकर सोने की पीठवाले सुदृढ़ धनुष को लेकर और तीक्ष्ण नोक तथा स्वर्ण-पङ्खवाले बाणों को खींचकर हँसते हुए उन देवी के हृदय को बिद्ध किया ।।२८-२९

तब कुपित होकर भयानक पराक्रमवाली महा-माया चण्डिका परमेश्वरी ने चक्र द्वारा ही दैत्यों को मारा ।।३०

दैत्यों के शरीर से निकले हुए बहुत से रक्त से भय-दायिनी भयङ्कर नदी उत्पन्न हो गई, जिसमें मुकुट, पगड़ी आदि फेन के समान, हाथी द्वीप के समान और लौह-दण्ड (तोमर) घड़ियालों के समान शोभित होने लगे ।।३१-३२

राक्षसों के द्वारा सुशोभिता वह नदी कौओं और बाजों से युक्त होकर और सैकड़ों गीदड़ियों के शोर से गुंजायमाना होकर बड़ी भयङ्कर थी। बेतालों के समूहों से भरी हुई और भयङ्कर हुंकार से वह बड़ी भीषण थी। महा-वीर महिष भी उसे देखकर हताश हो उठा ।।३३-३४

सिंह पर चढ़ी हुई और लाल आँखोंवाली गर्जती उन महा-माया को वेग से आती हुई देखकर समस्त सेनाओं से युक्त उस वीर ने चारों ओर से उन पर बाणों की धारा-प्रवाह वर्षा की, जिस प्रकार मेघ जल-वर्षा करते हैं ।।३५-३६

तब क्रोध के वश में हुई भयानक-स्वरूपा, अति-भय-दायिनी देवी नवीन धनुष लेकर किल-किला शब्द करके दैत्य-राज को मारने की इच्छा से दौड़ीं ।।३७

उन्हें आती हुई देखकर महा-बली दैत्य-राज भी क्रोध में भर कर किल-किला शब्द कर दौड़ा ।।३८

खड्ग और ढाल लिये हुए, महा-बली, पराक्रमी दैत्य ने सिंह को मारा और शत्रु-वीरों को हत करनेवाला गर्जन किया ।। ३९

उस खड्ग ने महात्मा सिंह के हृदय तक पहुँचकर उससे रक्त की धारा बहा दी, जैसे गेरू के पर्वत से लाल धारा निकली हो। तब कोपाविष्टा चण्डिका ने क्रोध से उन्मत्त होकर तुरन्त ही बाणों को लेकर दैत्येन्द्र पर फेंके। बाण से बिंधकर दैत्येन्द्र ने महिष का रूप धारण कर लिया ।।४०-४१

उन देवी ने त्रिशूल लेकर हृदय में मारा, तब श्रेष्ठ दैत्य ने महिष का रूप छोड़कर हाथी का रूप धारण कर लिया ।।४२

सुन्द ने दैत्यों के साथ शीघ्र ही देवी के सिंह पर अधिक शक्ति के साथ प्रहार किया किन्तु उन देवी ने अति तेज-पूर्ण पाश से उस घोर दैत्य को बाँध लिया। दैत्येन्द्र ने अपने शरीर को पाश से बँधा हुआ समझ कर हाथी का रूप छोड़कर पुनः महिष का रूप धारण कर लिया ।।४३-४४

उसकी पूँछ से ताड़ित सागर ने चारों ओर बाढ़ से जल भर दिया। अपनी सींगों से उसने ऊँचे पर्वतों को छिन्न-भिन्न कर दिया और गर्जन किया ।।४५

इस बीच में उन देवी ने बारम्बार पान कर त्रिशूल लिया और महिष के शरीर से आधा निकले हुये दैत्य के हृदय में प्रहार किया ।।४६

शूल के प्रहार से महा-बली दैत्य-राज स्तब्ध रह गया। फिर भी, खड्ग और कवच-धारी वह युद्ध करने की कामना से प्रस्तुत था किन्तु हृदय में स्तब्ध होकर वह दैत्य पृथ्वी-तल पर चल नहीं सका ।।४७

तब कुपिता चण्डी ने शीघ्र ही खड्ग लेकर महिषासुर के सिर को काटकर पृथ्वी-तल पर गिरा दिया ।।४८

हे श्रेष्ठ द्विज ! उस महा-बली घोर दैत्य के मर जाने पर धरती स्वस्थ हो गई। बचे हुये दैत्य भयभीत होकर सेनाओं और वाहनों के साथ पाताल-देश में प्रवेश कर गए ।।४९

नवाँ अध्याय

[सुन्द और उपसुन्द का वध]

श्री मैत्रेय बोले—हे द्विज-श्रेष्ठ, वेद और वेदाङ्ग में पारङ्गत, मार्कण्डेय ! महिष के मारे जाने पर उन देवी ने क्या किया ? ।।१

मार्कण्डेय ने कहा—हे मुने ! महिष के दो विख्यात वीर पुत्र सुन्द और उप-सुन्द ने वायु पीते हुए तपस्या की थी ।।२

वे दोनों वीर सूखे पत्ते खाकर शिव की आराधना में लगे रहे थे और महा-बली वे दोनों एक पैर से खड़े रहे थे ।।३

दश हजार वर्षों तक वे वायु-भोजन में तत्पर रहे थे। उनके तप से सन्तुष्ट होकर बैल पर सवार देवेश महेश्वर वहाँ पहुँचे, जहाँ वे दोनों तपस्या कर रहे थे और उनसे कहा कि–'हे दोनों दैत्य-राज ! अपनी मनोकामना का फल पानेवाला वर माँगो' ।।४-५

हे ब्रह्मन् ! शङ्कर के वचन को सुनकर उन दोनों महा-बली, महा-वीर सुन्द और उपसुन्द ने ध्यान करना छोड़कर कहा कि—।।६

'हे भूतेश्वर देवेश ! आपकी कृपा से हम दोनों मनुष्यों, सभी देवताओं, दानवों, यक्षों चारणों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों—किन्हीं के भी द्वारा पराजित न हों।' उन दोनों से 'ऐसा ही हो', कहकर शङ्कर स्वर्ग को चले गये ।।७-८

शिव से वर पाकर उन दोनों दैत्यों ने अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न होकर विजय के लिए निश्चय कर समस्त सेनाओं को एकत्र कर सभी देवों को पराजित कर दिया और प्रसन्न होकर राज्य करने लगे ।।९

तब देव-गण मनुष्यों के समान होकर पृथ्वी पर भटकने लगे। हे द्विजों में श्रेष्ठ मुने ! उस समय वे दोनों दैत्य-राज सूर्य, चन्द्र, अग्नि, यम, वायु, इन्द्र, मरुत और ब्रह्मा तक के कार्य करने लगे ।।१०-११

इस प्रकार पराजित देवता, जो पृथ्वी पर मनुष्यों के समान रहने लगे थे, देवाधिदेव चक्र-धारी विष्णु की शरण में गए ।।१२

तब हे श्रेष्ठ द्विज ! सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि, पवन, इन्द्र और ब्रह्मा भी दुखी होकर गए ।।१३

राज्य-हीन और तेज-हीन हुये ब्रह्मा आदि सभी देवताओं ने देव-देवेश, आदि-देव जनार्दन को देखा ।।१४

हे श्रेष्ठ द्विज ! उन सनातन देव-देव को सुन्दासुर से पीड़ित देवताओं ने काँपते हुए बारम्बार प्रणाम किया ।।१५

"हे प्रभो ! सुन्द और उपसुन्द ने हमारे राज्य छीन लिए हैं। राज्य-च्युत हम लोग क्या करें और कैसे-कहाँ जाएँ ?" ।।१६

देवताओं की बात सुनकर भगवान् जगदीश्वर चिन्ता से व्याकुल-नेत्र होकर आद्या शक्ति की स्तुति करने लगे ।।१७

माता त्वमेवासि पिता त्वमेव,
त्वमेव भ्राता च स्वसा त्वमेव ।
काष्ठा त्वमेवासि कला त्वमेव,
काल - स्वरूपाऽखिल - लोक - हेतुः ।।१
अन्ने रसस्त्वं पुरुषेषु तेजः,
पुष्पेषु वासोऽपि गवां हि क्षीरम् ।
सूर्ये प्रभा त्वं शशिनोऽमृतं च,
हरेः श्रियं त्वां प्रणतोऽस्मि नित्यं ।।२
नित्या त्वमेवासि तथाऽप्यनित्या,
नित्याऽसि लोके खलु मोहिनीति ।
जागर्ति-रूपाऽसि जगत्-त्रयेऽपि,
ख्याताऽसि मायेति समस्त-देहिनां ।।३
विद्या त्वविद्याऽसि सदैव भाविनी,
भूतादि-भूताऽसि दिवा च रात्रिः ।
आद्यन्त-हीना ह्यविचिन्त्य-रूपा,
जलं स्थलं व्याप्य सदैव तिष्ठसि ।।४

सगुणा निर्गुणा त्वं हि, सकला निष्कला तथा ।
उप-श्रुतिः श्रुतिश्चैव, स्वर्ग-मर्त्य-विभाविनी ॥५
स्वधा स्वाहा परेशानी, काल-रात्रिश्च कालिका ।
परा वरा स्तम्भिनी च, योग-निद्रा सनातनी ॥६
दुर्गा शाकम्भरी गौरी, पार्वती परमेश्वरी ।
सावित्री मङ्गला भद्रा, गायत्री च महा-बला ॥७
माहेश्वरी च चामुण्डा, कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डैन्द्री च वाराही, ब्रह्माणी नारसिंहिनी ॥८

'तुम्हीं माता हो, पिता तुम्हीं हो, तुम्हीं भाई हो और तुम्हीं बहन हो । तुम्हीं काष्ठा (सीमा) हो, कला तुम्हीं हो, समस्त संसार की कारण –काल-स्वरूपा हो ॥१८

'अन्न में तुम रस हो, पुरुषों में तेज हो । फूलों में सुगन्ध और गायों में दूध हो । सूर्य में प्रकाश हो और चन्द्रमा में अमृत हो । हरि की श्री तुमको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ॥१९

'तुम्हीं नित्या हो और अनित्या भी । निश्चय ही संसार में तुम नित्या मोहिनी हो । तीनों लोकों में तुम जागृति-स्वरूपा हो और सभी शरीर-धारियों में माया-नाम से तुम्हीं प्रसिद्ध हो ॥२०

'तुम विद्या और अविद्या हो, सदैव भावना-मयी हो । भूतों की तुम आदि-स्वरूपा हो । दिन और रात तुम्हीं हो । आदि और अन्त से रहित तुम्हारा स्वरूप अचिन्तनीय है । जल और स्थल को [illegible] र तुम सदा ही विद्यमान रहती हो ॥२१

'सगुणा और निर्गुणा तुम्हीं हो तथा सकला और निष्कला भी हो । श्रुति और उप-श्रुति तुम्हीं हो, स्वर्ग और मृत्यु-लोक की तुम्हीं रचना करनेवाली हो ॥२२

'स्वधा, स्वाहा, परमेशानी, काल-रात्रि, कालिका, परा, वरा, स्तम्भिनी, सनातनी और योग-निद्रा तुम्हीं हो ॥२३

'दुर्गा, शाकम्भरी, गौरी, पार्वती, परमेश्वरी, सावित्री, मङ्गला, भद्रा, गायत्री और महा-बला तुम्हीं हो ॥२४

'माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, वाराही, ब्रह्माणी और नारसिंही तुम्हीं हो' ।।२५

मार्कण्डेय ने कहा—इस प्रकार उन जनार्दन विष्णु द्वारा स्तुति किए जाने पर वे परमेश्वरी बोलीं कि 'हे जनार्दन ! मैं देवताओं और मुनियों का सदा कल्याण करूँगी' ।।२६

तब देव-देवेश्वर विष्णु द्वारा विदा किये गए देवता अपने-अपने स्थान को लौट गए और जगत् के स्वामी, महान् विश्वात्मा भगवान् भी विश्राम करने लगे ।।२७

हे ब्रह्मन् ! तब वे चण्डिका मोहिनी-रूप में श्रेष्ठ और मनोहर पर्वत विन्ध्याचल के समीप आईं। उन महा-माया का रूप दिव्य तथा अत्यन्त ही सुन्दर, हृदय-हारी था ।।२८

इसी बीच सुन्द और उप-सुन्द नाम से प्रसिद्ध दोनों महा-दैत्य-राज वहाँ आ पहुँचे ।।२९

उन दोनों वीरों ने उन विश्व-मोहिनी कल्याणी देवी मोहिनी को देखा और खड्ग खींच कर बोले कि 'यह सुन्दर स्वरूपवाली मेरी है' ।।३०

'मैं इससे विवाह का इच्छुक हूँ, यह मेरी पत्नी होगी'—यह कहते हुए वे दोनों दैत्य मोहिनी की ओर बढ़े ।।३१

सुन्दरी मोहिनी ने अपने रूप, मधुर हँसी, मीठी वाणी और मोहक कटाक्षों से उन दोनों भयानक असुरों को मुग्ध कर दिया ।।३२

मोहिनी की कामना से सुन्द ने वीर उपसुन्द को और उपसुन्द ने सुन्द को—दोनों वीरों ने एक-दूसरे को खड्ग से मार डाला ।।३३

हे श्रेष्ठ द्विज ! इस प्रकार दैत्य-राजाओं से युद्ध किये बिना ही मोहिनी ने उन दोनों घोर दैत्यों को बिना किसी रक्त-पात के नष्ट कर दिया ।।३४

वह चण्डिका इस प्रकार नित्या, विष्णु-माया नाम से सदा संसार की सृष्टि, स्थिति और लय करती रहती हैं ।।३५

परम शिव के आश्रय में रहनेवाली वही शक्ति-स्वरूपा विद्या है, साथ ही अविद्या भी है और वही सभी प्राणियों को बन्धन में डालती है तथा उन्हें बन्धन से मुक्त भी करती है ।।३६

दसवाँ अध्याय

[मुर आदि दैत्यों का संहार]

मैत्रेय बोले—'मुर' नाम का वह कौन था : देवता, यक्ष या असुर ? विष्णु किस प्रकार 'मुरारि' नाम से विख्यात हुए, यह कहिए ॥१

मार्कण्डेय ने कहा—'मुर' नामक एक असुर-राज बली दानव था। उसे प्राचीन काल में रजः, सत्त्व से युक्त गुणवान् तपोमय, निर्गुण, सर्वत्र पहुँचनेवाले, सर्व - व्यापी, मधु-सूदन, देवी - सहाय, भगवान् विष्णु ने मारा और 'मुरारि' कहलाए ॥२-३

मैत्रेय बोले—जो 'मुर' नाम से विख्यात है, वह किसका पुत्र कहा गया है ? विष्णु के द्वारा युद्ध में वह किस प्रकार मारा गया ? यह सब मुझे बतलाइए ॥४

मार्कण्डेय बोले—मैं मुरासुर के संहार की कथा कहूँगा, सुनिए। यह कथा विचित्र है, पुण्य-दायक और पाप-नाशक है ॥५

कश्यप के औरस पुत्र 'मुर' नामक उस दानव ने मृत्यु-भय को दूर करने के लिए अत्यन्त कठिन तपस्या की ॥६

उसने अजेय भगवान् ब्रह्मा की आराधना की। तब उससे प्रसन्न होकर वर देने को उद्यत उन्होंने कहा 'हे पुत्र ! वर माँगो' ॥७

उस दैत्य ने लोकों के स्वामी ब्रह्मा से यह भयङ्कर वर माँगा कि—'जिस-जिसको मैं अपने हाथ से छुऊँ, वह तुरन्त मर जाए।' लोकों के पितामह ने कहा कि 'ऐसा ही हो' ॥८

तदनन्तर अत्यन्त तेजस्वी और बलवान् मुर देव-पर्वत पर गया और उसने देवों, यक्षों तथा किन्नरों को ललकारा ॥९

हे द्विज ! उस दैत्य के साथ कोई युद्ध करने नहीं आया। तब घमण्ड के साथ देव-पुरी अमरावती में जाकर उसने इन्द्र को ललकारा। स्वर्ग में प्रवेश करते हुये उसे रोकने का किसी को साहस नहीं हुआ ॥१०

वह मुर तब इन्द्र के महल में जाकर बोला—हे सहस्त्र नेत्रोंवाले इन्द्र ! मुझसे युद्ध करो, नहीं तो स्वर्ग छोड़कर चले जाओ' ॥११

दैत्य मुर के इस प्रकार कहने पर, हे ब्रह्मन् ! इन्द्र ने सोचा कि 'इसके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है' और स्वर्ग के राज्य को छोड़कर वे पृथ्वो पर आ गए ।।१२

तब शत्रु मुर ने इन्द्र के हाथी ऐरावत और वज्र को ले लिया और परिवार-सहित सभी देवताओं के साथ महा-तेजस्वी देव-राज इन्द्र कालिन्दी के दक्षिणी तट पर आकर वहाँ के नगर में रहने लगे। मुर भी स्वर्ग में रहता हुआ दिव्य भोगों का सुख लेने लगा ।।१३-१४

भय और तार आदि अन्य भयङ्कर दानव भी देव-पुरो में पहुँच कर आनन्द मनाने लगे, जैसे स्वर्ग में पुण्यवान् लोग मनाते हैं ।।१५

किसी समय वह घोर असुर पृथ्वी-तल पर आया और हाथी पर अकेले बैठा हुआ सरयू नदी के किनारे पहुँचा ।।१६

उसने सरयू के तट पर सूर्य-वंशी रघु नामक वीर राजा को देखा, जो यज्ञ-कर्म में संलग्न थे ।।१७

उन राजा के पास पहुँचकर दैत्य ने कहा कि—'मुझसे युद्ध करो, नहीं तो यज्ञ बन्द करो। तुम्हें देवताओं का यजन नहीं करना चाहिए' ।।१८

हे ब्रह्मन् ! मित्रा-वरुण से उत्पन्न, तपस्वियों में श्रेष्ठ, अति तेजस्वी, बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठ ने उससे कहा–।।१६

'मनुष्यों को जीतने से क्या लाभ ? दुश्चरित्र दैत्यों को अपने शासन में रखो। यदि उन्हें मारना नहीं चाहते, तो तुम यम-राज को पकड़ो। यदि वह पराक्रमी तुम्हारे शासन को सर्वत्र स्वीकार कर ले, तो समझो, पृथ्वो पर सभी तुमसे पराजित हो गये' ।।२०-२१

वसिष्ठ की इस बात को सुनकर दैत्य-श्रेष्ठ दण्ड-धारी धर्म-राज को जीतने के लिये चल पड़ा ।।२२

उसे आता हुआ सुनकर यम-राज ने जाकर दो भैंसे रथ में लगाए और उस पर चढ़कर वे केशव के पास जा पहुँचे ।।२३

उन्होंने उन विष्णु की वन्दना कर मुर की चेष्टा बताई। विष्णु ने कहा कि–'जाओ, उस घोर असुर को मेरे पास भेजो' ।।२४

विष्णुदेव की बात सुनकर शीघ्रता से यमराज वापस चल पड़े। इसी बीच मुर यमपुरी में पहुँचा ।।२५

उसे आया हुआ देखकर यम-राज बोले—'हे दानवेश्वर मुर! क्या करना चाहते हो ? तुम अपने मन की कामना बताओ' ।।२६

मुर ने कहा--हे यम ! यहाँ तुम्हें प्रजा का शासन नहीं करना चाहिए, नहीं तो आज मैं तुम्हारा सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दूँगा ।।२७

उससे धर्म-राज ने यह बात कही कि 'तुम मुझे क्यों रोकते हो ? मैं तो किसी अन्य के द्वारा नियुक्त हूँ। अपनी इच्छा से तो यह कार्य करता नहीं हूँ' ।।२८

मुर ने उनसे कहा--'तुम्हारा शासक कौन है, मुझे बताओ। मैं इस स्थान को छोड़कर लौट जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं' ।।२९

यम ने उससे कहा—'श्वेत द्वीप के निवासी जो विष्णुदेव चक्र और गदा धारण करते हैं, वही अविनाशी मेरे शासक हैं' ।।३०

हे मुनि-श्रेष्ठ ! उनसे मुर ने कहा—'वे अजेय कहाँ रहते हैं ? मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा। उनके निवास-स्थान को मुझे बताओ' ।।३१

यम ने उससे कहा--'क्षीरोद नामक सागर को जाओ, जहाँ तपोमय स्वामी विष्णुदेव रहते हैं' ।।३२

यह बात सुनकर मुर बोला—'मैं केशव के पास जाता हूँ, किन्तु तब तक तुम पापी लोगों को मत बाँधना' ।।३३

उन यम ने कहा-'तुम जाओ, विजय पाने की चेष्टा करो और जैसी सम्पन्नता तुम्हें मिले, उससे इस व्यक्ति को भी अवगत कराओ' ।।३४

'अच्छा' कहकर मुर दुग्ध-सागर की ओर चला, जहाँ शेष-शय्या पर चतुर्मूर्ति जनार्दन विराजमान थे ।।३५

'हे लक्ष्मी-पति ! मुझे युद्ध दीजिए, मेरी दोनों भुजाएँ खुजला रही हैं। अपने समान मैं किसी को नहीं देखता, जिसके साथ मैं युद्ध करूँ' ।।३६

दैत्य की इस दर्प-पूर्ण बात को सुनकर केशव ने कहा-'अभी तुम्हारी मृत्यु का समय नहीं आया है। हे दैत्य-राज ! द्वापर युग के आने पर दुष्टों के नाश के लिये मैं पृथ्वी पर कृष्ण-रूप से अवतरित होऊँगा। तब बहुत सी कन्याओं के अपहर्ता, बैलों, गायों और ब्राह्मणों के द्वेषी, ऋषियों को कष्ट देनेवाले, प्राग्ज्योतिष-पुर के स्वामी, भौम नामक महाऽसुर को मैं मारूँगा ।।३७-३९

'तुम तुरन्त पृथ्वी-लोक में जाओ। वहाँ निर्विघ्न-रूप से राज्य करते हुये युद्ध-रस की प्राप्ति के लिए समय की प्रतीक्षा करो। जिस देश में और जिस समय प्राणियों की मृत्यु निश्चित होती है, वहीं और उसी समय मनुष्य, दैत्य या पशु को वह मृत्यु मिलती है' ।।४०-४१

मार्कण्डेय बोले—हे मुनि-श्रेष्ठ ! इस प्रकार बहुत समय बिता-कर उस दानव मुर ने भौमासुर की सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया ।।४२

वह बलवान् मुर अपने दस पुत्रों और पञ्च लोगों के साथ सुन्दर प्राग्-ज्योतिषपुर की रक्षा करने लगा। शुम्भ तथा अन्धक दो वीरों ने उसकी सहायता की ।।४३

विष्णु की सनातनी महा-माया भगवती देवी नन्द गोप के घर में कृष्ण की कल्याणी बहन के रूप में उत्पन्न हुईं ।।४४

भगवान् की शक्ति-स्वरूपा, तीनों लोकों को मुग्ध करनेवाली त्रिगुणा, परा प्रकृति ही अपने एक अंश से विख्यात हुईं ।।४५

उनसे युक्त होकर अब द्वापर में सभी लोकों द्वारा वन्दित, पालन-कर्ता, भूतात्मा, देवी-सहाय भगवान् ने अवतार लिया।४६।।

विष्णुदेव के कृष्णावतार द्वारा वह मुर दैत्य अति भयङ्कर युद्ध में अनायास ही अपने पुत्रों के साथ मारा गया ।।४७

हयग्रीव, अन्धक, मुर, पञ्च लोग और चतुरङ्गिणी सेना से युक्त महा-वीर शुम्भ तथा अन्य सभी दैत्य युद्ध में कृष्ण के द्वारा मारे गए ।।४८

मुर दैत्य को मारकर तब से दैत्य-शत्रु देवेश्वर भगवान् विष्णु 'मुरारि' नाम से प्रसिद्ध हुये और उन्होंने परमा ख्याति पाई ।।४९

इस प्रकार हे द्विज ! विष्णु की शक्ति-स्वरूपिणी नित्या भगवती स्वयं अथवा विष्णु की सहायता से दैत्यों का संहार करती है ।।५०

सभी प्राणियों के बन्धन और मोक्ष की कारण-भूता वही परम प्रधान हैं। उन परमेश्वरी की भक्ति-पूर्वक आराधना कर लोग भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करते हैं ।।५१

ग्यारहवाँ अध्याय

[तीर्थों का माहात्म्य]

मैत्रेय ने पूछा—हे मुने ! सूर्य कहाँ से उत्पन्न हुआ ? चन्द्रमा कहाँ से उत्पन्न हुआ ? अग्नि कहाँ से उत्पन्न हुआ और जल कहाँ से उत्पन्न हुआ ? मुझे यह सब सन्देह है, कृपया ठीक-ठीक बताएँ ।।१

मार्कण्डेय बोले-जनार्दन नारायण हरि ही आदि-देव हैं। हे द्विज ब्रह्मन् ! उनके दाएँ नेत्र से सूर्य, बाँएँ नेत्र से चन्द्रमा और उनके तेज से अग्नि उत्पन्न हुआ ।।२

उन्हीं हरि के थूक से संसार में जल की प्रतिष्ठा हुई और हे द्विज ! हरि के श्वास को वायु जानो। हे निष्पाप ब्रह्मन् ! जो तुमने पूछा, वह मैंने तुमसे कहा है ।।३

मैत्रेय ने कहा—हे महा-मुने ! तीर्थों की महिमा कहिए क्योंकि इनकी कथा सुनकर सभी पापों से व्यक्ति छूट जाता है ।।४

मार्कण्डेय बोले—सभी धर्मों से रहित कोई भी मनुष्य गङ्गा में स्नान कर पुण्यों से युक्त हो जाता है और मरने पर मोक्ष पाता है ।।५

हे मुने ! जो महिमा को बिना जाने हुये भी 'गङ्गा-गङ्गा' इस प्रकार प्रति-दिन कहता है, वह सात जन्मों में किये हुये पापों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।६

बुद्धिमान् मनुष्य सदा गङ्गा में स्नान कर दान देता है और देवताओं तथा पितरों का तर्पण करता है ।।७

हे श्रेष्ठ द्विज ! गङ्गा किनारे विधिपूर्वक श्राद्ध कर ब्राह्मण को ध्यान देकर यथा-शक्ति धन देना चाहिए ।।८

हे मुने ! 'असी' और 'वरुणा' नदियों के मध्य में 'वाराणसी'-क्षेत्र है। जो कोई वहाँ देह-त्याग करता है, वह साक्षात् नारायण होता है ।।९

कामनाओं को देनेवाले तीर्थ-राज प्रयाग में 'मुण्डन' कराना चाहिए। वहाँ देह-त्याग करने से अभीष्ट फल प्राप्त होता है ।।१०

निमिष-क्षेत्र में नैमिष तीर्थ है, वहाँ स्नान करने की विधि है। डुबकी लगाने से ही करोड़ों जन्म में किए पाप नष्ट हो जाते हैं ।।११

हे श्रेष्ठ द्विज ! चक्र-तीर्थ (गण्डक-नदी) में बुद्धिमान को दान देना चाहिए । वहाँ विधि-पूर्वक स्नान करने से सभी पापों से व्यक्ति छूट जाता है ।।१२

हे श्रेष्ठ द्विज ! बुद्धिमान् को कुरु-क्षेत्र में दान देना चाहिए । वहाँ विधि-पूर्वक स्नान कर बहु-संख्यक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।।१३

'पुष्कर' में सदैव स्नान करना चाहिए और द्विजाति के लोगों को गाय देनी चाहिए । इससे सात जन्मों में किए पापों से व्यक्ति छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।१४

'पृथूदक में प्रति-दिन स्नान करनेवाला मनुष्य विलक्षण बन जाता है, उसके दर्शन मात्र से ब्रह्म-हत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१५

'कपाल-मोचन में भी स्नान कर श्रेष्ठ मनुष्य पृथ्वी पर सभी पापों से मुक्त हो जाता है और वह दिव्य लोक को जाता है ।।१६

हे श्रेष्ठ मुनि ! 'प्रभास' तीर्थ में सदैव स्नान कर मनुष्य सात जन्मों में किए पापों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।१७

हे मुने ! 'हरिद्वार' आदि और 'विदर्भ आदि तीर्थ तथा पवित्र आश्रम, क्षेत्र, मन्दिर आदि सभी दर्शनीय हैं । उनके सम्पर्क में साव-धानी-पूर्वक आना चाहिए क्योंकि उनके दर्शन और स्पर्श मात्र से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१८-१९

परिशिष्ट

श्रीचण्डी-सम्बन्धी साहित्य

जर्मनी (योरप) में मुद्रित कैटालॉगस कैटॉलॉगोरम, भाग १ के पृष्ठ १७६–१७७ पर जगज्जननी चण्डी से सम्बन्धित ५३ ग्रन्थों का उल्लेख निम्न प्रकार है—

१ चण्डिका-काम्य-होम-विधि, २ चण्डिका-कीलक, ३ चण्डिका-चरित, ४ चण्डिका-दण्डक-स्तोत्र, ५ चण्डिका-देवी कवच, ६ चण्डिका-नित्य-पूजा, ७ चण्डिका-पाठ-विधि, ८ चण्डिका-पूजा-विधान, ९ चण्डिका-पजा-विधि, १० चण्डिकार्गल, ११ चण्डिकार्चन-क्रम, १२ चण्डिकार्चन-चन्द्रिका, १३ चण्डिका-शतक, १४ चण्डिकाष्टोत्तर-शत-नामन्, १५ चण्डिकाष्टोत्तर-शत-नामावली, १६ चण्डिका-सन्तति, १७ चण्डिका-स्तोत्र, १८ चण्डिका-हवन-प्रयोग, १९ चण्डिका-हवनाङ्ग-वेदोक्त-पुण्याहवाचन-प्रयोग, २० चण्डिका-हृदय, २१ चण्डी (चण्डिका); २२ चण्डी-कल्प, २३ चण्डी-कवच, २४ चण्डी-कुच-पञ्चशती, २५ चण्डी-चरित, २६ चण्डी-चरित-चन्द्रिका, २७ चण्डी-डामर-टीका, २८ चण्डी - पद्धति, २९ चण्डी - पाठ, ३० चण्डी - पाठ-फल - वर्णन, ३१ चण्डी-पाठ-यन्त्रादि, ३२ चण्डी-पाठ-विधान, ३३ चण्डी-पुराण, ३४ चण्डी-पूजा-रसायन, ३५ चण्डी-प्रकरण, ३६ चण्डी-प्रयोग, ३७ चण्डी-माहात्म्य, ३८ चण्डी-रहस्य; ३९ चण्डी-विधान, ४० चण्डी-विधान - पद्धति, ४१ चण्डी - विधि, ४२ चण्डी - विलास नाटक, ४३ चण्डी-विलास तन्त्र, ४४ चण्डी-शतक, ४५ चण्डी-सपर्या-क्रम, ४६ चण्डी-सपर्या-क्रम-कल्प-वल्ली, ४७ चण्डी-सहस्र-नामन्, ४८ चण्डी-सार्ध-नव-विषय, ४९ चण्डी-स्तव-मन्त्र-परिच्छेद, ५० चण्डी-स्तोत्र, ५१ चण्डी-स्तोत्र-क्रम, ५२ चण्डी-स्तोत्र-प्रयोग-विधि, ५३ चण्डी-स्तोत्रान्तर्गत-मूर्ति-रहस्य-टीका।

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग में संगृहीत संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची अंग्रेजी में छपी है। उसके ग्रन्थ १ के प्रथम भाग के पृष्ठ ३०० पर–

१ चण्डिका-शाप-विमोचन-मन्त्रः, २ चण्डी-पाठ-क्रमः, ३ चण्डी-पाठ-विधानम्, ४ चण्डी-प्रयोग-विधिः, ५ चण्डी-षोडशोपचार-पूजन-विधिः, ६ चण्डी-स्तोत्र-प्रयोग-विधिः।

ग्रन्थ ३ के पृष्ठ १७० पर–

१ चण्डिकार्चन-विधिः, २ चण्डिका-शाप-विमोचनम्, ३ चण्डिका-शाप-विमोचन-मन्त्रः, ४ चण्डिका-शापोद्धारः, ५ चण्डी-पाठ-क्रमः, ६ चण्डी-विधिः, ७ चण्डी-शाप-विमोचन-मन्त्रः, और ग्रन्थ ३ के ही पृष्ठ २६८ पर—८ रुद्र-चण्डी स्तोत्रम्—

कुल १४ पाण्डुलिपियाँ देवी चण्डी या चण्डिका से सम्बन्धित द्रष्टव्य हैं।

वाराणसेय संस्कृत विश्व-विद्यालय की 'विवरण-पञ्जिका' के 'तन्त्र-ग्रन्थ-संग्रहात्मक षष्ठ भाग' के विविध पृष्ठों में १३ ऐसी पाण्डुलिपियों का उल्लेख है, जिनके नामों से 'चण्डी'–पद संयुक्त है। यथा—

चण्डी-पाठ-फलम् (पृष्ठ २०/१०८), २ चण्डी-सपर्या-क्रम-कल्प-वल्ली (पृष्ठ ८६/९२/१५६), ३ मङ्गल-चण्डी-पूजा-पद्धति (पृष्ठ १०४), ४ रुद्र-चण्डिका (पृष्ठ १२४), ५ चण्डी-सप्तशती-विधानम् (पृष्ठ १२४), ६ चण्डिका-हृदयम् (पृष्ठ १३), ७ चण्डी-मन्त्र-ध्यानम् (पृष्ठ १६८), ८ चण्डी-पाठ-फल-कथनम् (पृष्ठ २०६), ९ चण्डी-पाठ-क्रमः (पृष्ठ २३८), १० चण्डिका - यन्त्र - विधिः (पृष्ठ २५०), ११ चण्डिकाष्टकम्, १२ चण्डी-प्रयोग-विधिः, १३ चण्डी-स्तोत्रम्।

उक्त 'पञ्जिका' के पृष्ठ २५५ के बाद 'अक्षरानुक्र-मणिका' भी दी है किन्तु उसमें क्रमाङ्क ११, १२, १३ की पाण्डुलिपियों की जो संख्याएँ दी हैं, वे भ्रामक हैं। मूल भाग में उन संख्याओं पर अन्य पाण्डुलिपियों के नाम अङ्कित हैं।

म० म० स्व० पं० गोपीनाथ कविराज 'पद्म-विभूषण' कृत 'तान्त्रिक साहित्य' नामक शोध-ग्रन्थ (पृष्ठ-संख्या ८००, मूल्य ३० रु०) के पृष्ठ १६६–२०३ में भगवती चण्डी-विषयक तीस पाण्डुलिपियों का उल्लेख है। यथा—

१ चण्डिका-क्रम, २ चण्डिका - नवाक्षरी - मन्त्र-प्रकाशिका, ३ चण्डिका-पूजा, ४ चण्डिकार्चन-क्रम, ५ चण्डिकार्चन-चन्द्रिका, ६ चण्डिकार्चन-दीपिका, ७ चण्डिका-शतकम्, ८ चण्डिका-स्तोत्र, ९ चण्डिका-हृदय, १० चण्डी-टीका, ११ चण्डी-नवार्ण-पटल, १२ चण्डी-पद्धति, १३ चण्डी-पाठ, १४ चण्डी-पाठ-क्रम, १५ चण्डी-पाठ-प्रयोग-विधि, १६ चण्डी-पुराण, १७ चण्डी-पूजा-विधान, १८ चण्डी-पूजा-विधि, १९ चण्डी-प्रयोग-विधि, २० चण्डी-रहस्य, २१ चण्डी-विधान, २२ चण्डी- विधान - पद्धति, २३ चण्डी-शतक, २४ चण्डी-विवरण, २५ चण्डी-सपर्या- कल्प, २६ चण्डी - सपर्या - क्रम-कल्प-वल्ली, २७ चण्डी-स्तोत्र-क्रम, २८ चण्डी-स्तोत्र-प्रयोग-विधि, २९ चण्डी-स्तोत्र (अञ्जलि) मूर्ति-रहस्य-टीका, ३० चण्डी-स्तोत्र-व्याख्या।

क्रमाङ्क १६ पर उल्लिखित 'चण्डी-पुराण' के सम्बन्ध में कविराज जी ने 'तान्त्रिक साहित्य' में लिखा है :

मार्कण्डेय मुनि-विरचित। इसमें वर्णित विषय हैं दक्ष को शाप, सती का देह-त्याग, पीठों का—जहाँ सती के विभिन्न अङ्ग गिरे थे—माहात्म्य, मधु-कैटभ-बध, दुन्दुभि-बध, घोर-बध, नमुचि और चिक्षुर का बध, महिषासुर-बध, सुन्दोपसुन्द-बध, सनत्कुमारोपाख्यान तथा मुर-बध।

प्रस्तुत 'चण्डी-पुराण' की अनुक्रमणिका से उक्त विषयों की समानता है। अतः यह कहा जा सकता है कि उक्त 'पाण्डुलिपि' का ही पहला मुद्रित संस्करण प्रथम बार हिन्दी रूपान्तर सहित इस पुस्तक-रूप में प्रकाशित हो रहा है।

निवेदन

'चण्डी' मासिक पत्रिका द्वारा चुने हुए विषयों पर शोध-पूर्ण विशेषाङ्क पिछले कुछ वर्षों से प्रकाशित किए जा रहे हैं। इससे शाक्त-धर्म-सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन-कार्य नित्य वृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है।

आपसे निवेदन है कि 'विशेषाङ्क'—योजना के सदस्य बनकर इस महान् कार्य में हमें अपना सहयोग प्रदान करें व पुण्य के भागी बनें।

ऋतशील शर्मा
(प्रबन्ध सम्पादक)

मन्त्र, तन्त्र, योग
शक्ति उपासना
प्रकाश डालने वाली
एकमात्र मासिक पत्रिका
चण्डी कार्यालय
चण्डी
अलोपीबाग, इलाहाबाद-२११००६